भास्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गाय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(केन्द्रिकपाठ्यक्रमः)

भास्वती

प्रथमो भागः

एकादशवर्गाय संस्कृतस्य पाठ्यपुस्तकम्

(*केन्द्रिकपाठ्यक्रमः*)

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
जनवरी 2006 माघ 1927

पुनर्मुद्रण
जनवरी 2007 माघ 1928
अक्तूबर 2007 आश्विन 1929
जनवरी 2008 पौष 1930
दिसंबर 2009 पौष 1931
जनवरी 2018 माघ 1939 (NTR)

PD 1T ML

© *राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2006*

₹ 00.00

एन.सी.ई.आर.टी. वाटरमार्क 80 जी.एस.एम. पेपर पर मुद्रित।

प्रकाशन प्रभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 द्वारा प्रकाशित तथा .... द्वारा मुद्रित।

ISBN 81-7450-471-0

सर्वाधिकार सुरक्षित

- प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना इस प्रकाशन के किसी भाग को छापना तथा इलेक्ट्रॉनिकी, मशीनी, फोटोप्रतिलिपि, रिकॉर्डिंग अथवा किसी अन्य विधि से पुन: प्रयोग पद्धति द्वारा उसका संग्रहण अथवा प्रसारण वर्जित है।
- इस पुस्तक की बिक्री इस शर्त के साथ की गई है कि प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना यह पुस्तक अपने मूल आवरण अथवा जिल्द के अलावा किसी अन्य प्रकार से व्यापार द्वारा उधारी पर, पुनर्विक्रय या किराए पर न दी जाएगी, न बेची जाएगी।
- इस प्रकाशन का सही मूल्य इस पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर अथवा चिपकाई गई पर्ची (स्टिकर) या किसी अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं होगा।

एन. सी. ई. आर. टी. के प्रकाशन प्रभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैम्पस
श्री अरविंद मार्ग
नयी दिल्ली 110 016 फोन : 011-26562708

108, 100 फीट रोड
हेली एक्सटेंशन, होस्डेकेरे
बनाशंकरी III इस्टेज
बेंगलुरु 560 085 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन
डाकघर नवजीवन
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस
निकट: धनकल बस स्टॉप पनिहटी
कोलकाता 700 114 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स
मालीगाँव
गुवाहाटी 781021 फोन : 0361-2674869

प्रकाशन सहयोग

अध्यक्ष, प्रकाशन प्रभाग : *एम. सिराज अनवर*
मुख्य संपादक : *श्वेता उप्पल*
मुख्य व्यापार प्रबंधक : *गौतम गांगुली*
मुख्य उत्पादन अधिकारी (प्रभारी) : *अरुण चितकारा*
सहायक संपादक : *एम. लाल*
सहायक उत्पादन अधिकारी :

चित्रांकन
प्रदीप नायक

आवरण
आलोक हरि

पुरोवाक्

2005 ईस्वीयायां राष्ट्रिय-पाठ्यचर्या-रूपरेखायाम् अनुशंसितं यत् छात्राणां विद्यालयजीवनं विद्यालयेतरजीवनेन सह योजनीयम्। सिद्धान्तोऽयं पुस्तकीय-ज्ञानस्य तस्याः परम्परायाः पृथक् वर्तते, यस्याः प्रभावात् अस्माकं शिक्षाव्यवस्था इदानीं यावत् विद्यालयस्य परिवारस्य समुदायस्य च मध्ये अन्तरालं पोषयति। राष्ट्रियपाठ्यचर्यावलम्बितानि पाठ्यक्रम-पाठ्यपुस्तकानि अस्य मूलभावस्य व्यवहारदिशि प्रयत्न एव। प्रयासेऽस्मिन् विषयाणां मध्ये स्थितायाः भित्तेः निवारणं ज्ञानार्थं रटनप्रवृत्तेश्च शिथिलीकरणमपि सम्मिलितं वर्तते। आशास्महे यत् प्रयासोऽयं 1986 ईस्वीयां राष्ट्रिय-शिक्षा-नीतौ अनुशंसितायाः बालकेन्द्रितशिक्षाव्यवस्थायाः विकासाय भविष्यति।

प्रयत्नस्यास्य साफल्यं विद्यालयानां प्राचार्याणाम् अध्यापकानाञ्च तेषु प्रयासेषु निर्भरं यत्र ते सर्वानपि छात्रान् स्वानुभूत्या ज्ञानमर्जयितुं, कल्पनाशीलक्रियाः विधातुं, प्रश्नान् प्रष्टुं च प्रोत्साहयन्ति। अस्माभिः अवश्यमेव स्वीकरणीयं यत् स्थानं, समयः, स्वातन्त्र्यं च यदि दीयेत, तर्हि शिशवः वयस्कैः प्रदत्तेन ज्ञानेन संयुज्य नूतनं ज्ञानं सृजन्ति। परीक्षायाः आधारः निर्धारित-पाठ्यपुस्तकमेव इति विश्वासः ज्ञानार्जनस्य विविधसाधनानां स्रोतसां च अनादरस्य कारणेषु मुख्यतमः। शिशुषु सर्जनशक्तेः कार्यारम्भप्रवृत्तेश्च आधानं तदैव सम्भवेत् यदा वयं तान् शिशून् शिक्षणप्रक्रियायाः प्रतिभागित्वेन स्वीकुर्याम, न तु निर्धारितज्ञानस्य ग्राहकत्वेन एव।

इमानि उद्देश्यानि विद्यालयस्य दैनिककार्यक्रमे कार्यपद्धतौ च परिवर्तनमपेक्षन्ते। यथा दैनिक-समय-सारण्यां परिवर्तनशीलत्वम् अपेक्षितं तथैव वार्षिककार्यक्रमाणां निर्वहणे तत्परता आवश्यकी येन शिक्षणार्थं नियतेषु

कालेषु वस्तुतः शिक्षणं भवेत्। शिक्षणस्य मूल्याङ्कनस्य च विधयः ज्ञापयिष्यन्ति यत् पाठ्यपुस्तकमिदं छात्राणां विद्यालयीय-जीवने आनन्दानुभूत्यर्थं कियत् प्रभावि वर्तते, न तु नीरसतायाः साधनम्। पाठ्यचर्याभारस्य निदानाय पाठ्यक्रमनिर्मातृभिः बालमनोविज्ञानदृष्ट्या अध्यापनाय उपलब्ध-कालदृष्ट्या च विभिन्नेषु स्तरेषु विषयज्ञानस्य पुनर्निर्धारणेन प्रयत्नो विहितः। पुस्तकमिदं छात्राणां कृते चिन्तनस्य, विस्मयस्य, लघुसमूहेषु वार्तायाः, कार्यानुभवादि-गतिविधीनां च कृते प्राचुर्येण अवसरं ददाति। पाठ्यपुस्तकस्यास्य विकासाय विशिष्टयोगदानाय राष्ट्रियशैक्षिकानुसन्धानप्रशिक्षणपरिषद् भाषापरामर्शदातृसमितेः अध्यक्षाणां प्रो. नामवरसिंहमहोदयानां, संस्कृतपाठ्यपुस्तकानां मुख्यपरामर्शकानां प्रो. राधावल्लभत्रिपाठिमहाभागानां, पाठ्यपुस्तकनिर्माणसमितेः सदस्यानाञ्च कृते हार्दिकीं कृतज्ञतां ज्ञापयति। पुस्तकस्यास्य विकासे नैके विशेषज्ञाः अनुभविनः शिक्षकाश्च योगदानं कृतवन्तः, तेषां संस्थाप्रमुखान् संस्थाश्च प्रति धन्यवादो व्याह्रियते। मानवसंसाधनविकासमन्त्रालयस्य माध्यमिकोच्चशिक्षाविभागेन प्रो. मृणालमिरी प्रो. जी. पी. देशपाण्डेमहोदयानाम् आध्यक्ष्ये संघटितायाः राष्ट्रिय-पर्यवेक्षणसमितेः सदस्यान् प्रति तेषां बहुमूल्ययोगदानाय वयं विशेषेण कृतज्ञाः।

पाठ्यपुस्तकविकासक्रमे उन्नतस्तराय निरन्तरं प्रयत्नशीला परिषदियं पुस्तकमिदं छात्राणां कृते उपयुक्ततरं कर्तुं विशेषज्ञैः अनुभविभिः अध्यापकैश्च प्रेषितानां सत्परामर्शानां सदैव स्वागतं विधास्यति।

जनवरी 2006 — निदेशकः

नवदेहली — राष्ट्रियशैक्षिकानुसंधानप्रशिक्षणपरिषद्

पाठ्यपुस्तक निर्माण समिति

अध्यक्ष, भाषा सलाहकार समिति

नामवर सिंह, *पूर्व अध्यक्ष,* भारतीय भाषा केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नयी दिल्ली।

मुख्य सलाहकार

राधावल्लभ त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर।

मुख्य समन्वयक

रामजन्म शर्मा, *प्रो.फेसर* एवं *अध्यक्ष,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

सदस्य

राजेन्द्र मिश्र, *पूर्व कुलपति,* सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

दीप्ति त्रिपाठी, *अध्यक्ष,* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

जगदीश सेमवाल, *निदेशक,* वी.वी.वी.आई.एस., एण्ड आई.एस. पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, पंजाब।

योगेश्वर दत्त शर्मा, सेवानिवृत्त, *रीडर,* हिन्दू कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

सुरेश चन्द्र शर्मा, *प्राचार्य,* राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, शक्ति नगर, दिल्ली।

छविकृष्ण आर्य, *उपप्रधानाचार्य,* केन्द्रीय विद्यालय, सेकेण्ड शिफ्ट, एण्ड्रूयूज गंज, नयी दिल्ली।

सरोज गुलाटी, *पी.जी.टी.,* कुलाची हंसराज मॉडल स्कूल, अशोक विहार, फेज–III, दिल्ली।

पी. एन. झा, *पी.जी.टी.*, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक बाल विद्यालय, आदर्श नगर, दिल्ली।

अनिता शर्मा, *पी.जी.टी.*, विवेकानन्द पब्लिक स्कूल, आनन्द विहार, दिल्ली।

सदस्य एवं समन्वयक

कमलाकान्त मिश्र, *प्रो.फेसर,* भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली।

आभार

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् उन सभी विषय–विशेषज्ञों, शिक्षकों एवं विभागीय सदस्यों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है जिन्होंने इस पुस्तक के निर्माण में अपना सक्रिय योगदान दिया है।

परिषद् केशवचन्द्र दाश, *प्रो.फ़ेसर,* हो.ना. वेङ्कटेश शर्मा, *संस्कृत अनुवादक* (मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार के सुब्बण्ण के संस्कृत अनुवादक) प्रभृति आधुनिक साहित्यकारों की भी आभारी है जिनकी कृतियों से प्रस्तुत पुस्तक में पाठ्य सामग्री संकलित की गई है।

पुस्तक की योजना–निर्माण से लेकर प्रकाशन पर्यन्त विविध कार्यों में यथासमय सक्रिय भूमिका निभाने के लिए संस्कृत पाठ्यपुस्तक समिति के समन्वयक व उनके विभागीय सहयोगी कृष्ण चन्द्र त्रिपाठी, *प्रवाचक,* रणजित बेहेरा, *प्रवक्ता* तथा दयाशंकर तिवारी, *प्रोजेक्ट एसोसिएट* साधुवाद के पात्र हैं।

सत्र 2017–18 में पुस्तक के पुनरीक्षण कार्य के समन्वयन के लिए भाषा शिक्षा विभाग के के.सी. त्रिपाठी, *प्रो.फ़ेसर,* जतीन्द्र मोहन मिश्र, *प्रो.फ़ेसर,* संगीता शर्मा, *असिस्टेंट प्रो.फ़ेसर* को परिषद् साधुवाद करती है। पुनरीक्षण में अनेकविध सहयोग एवं मार्गदर्शन के लिए परिषद् पी.एन. शास्त्री, *प्रो.फ़ेसर* एवं *कुलपति,* राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, रमेश कुमार पांडेय, *प्रो.फ़ेसर* एवं *कुलपति,* श्रीलालबहादुर शास्त्री राष्ट्रिय संस्कृत विद्यापीठ, रमेश भारद्वाज, *प्रो.फ़ेसर,* संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, रंजना अरोड़ा, *प्रो.फ़ेसर* एवं *विभागाध्यक्ष,* डी.सी.एस., एन.सी.ई.आर.टी., आभा झा, *पी.जी.टी.,* संस्कृत, गार्गी सर्वोदय कन्या विद्यालय, ग्रीनपार्क, नयी दिल्ली के प्रति हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त करती है। पुस्तक पुनरीक्षण में अनेकविध सहयोग हेतु जगदीश चन्द्र काला, *जे.पी.एफ.,* यासमीन अशरफ, *जे.पी.एफ.* एवं रेखा शर्मा, *डी.टी.पी. ऑपरेटर* धन्यवाद के पात्र हैं।

❖ ❖ ❖

भूमिका

संस्कृत विश्व की प्राचीनतम भाषा है, ऐसा पाश्चात्य एवं पौरस्त्य सभी विद्वान् मानते हैं। स्वर्गीय बालगंगाधर तिलक ने ऋग्वेद की मैत्रायणी-संहिता में वर्णित वसन्त-सम्पात की ज्योतिषीय गणना की और यह सिद्ध किया कि ईसा से लगभग 6500 वर्ष पूर्व ऐसी खगोलीय स्थिति रही होगी।

जर्मनी के प्रख्यात ज्योतिर्विद् हरमन जैकोबी ने भी शतपथ ब्राह्मण में वर्णित कृत्तिका नक्षत्रों की स्थिति का अध्ययन कर, उसे ईसा से 4500 वर्ष प्राचीन सिद्ध किया था। तुर्किस्तान में स्थित बोगाजकोई टीले की खुदाई में प्राप्त, वैदिक देवों (इन्द्र, मित्र, वरुण तथा नासत्य) के कीलित नामाक्षर से युक्त शिलापट्ट का अध्ययन कर चेकोस्लावाकिया के प्राग विश्वविद्यालय के महान् पुरातत्त्वविद् प्रो. ह्राज्नी ने भी अपनी रिपोर्ट में यह मत व्यक्त किया था कि ईसा से प्रायः दो हजार वर्ष पूर्व एशिया माइनर क्षेत्र में वैदिक संस्कृति और संस्कृत भाषा विद्यमान थी।

संस्कृत वाङ्मय का विकास वेद, वेदाङ्ग, आर्षकाव्य (रामायण तथा महाभारत) पुराण तथा अभिजात-साहित्य के क्रम से हुआ है। इसी के साथ पालि तथा प्राकृत भाषाएँ भी विकसित होती रही हैं। ईसा की प्रथम शती से चौथी शती के मध्य संस्कृत भाषा साहसी एवं स्वप्नदर्शी (महत्त्वाकांक्षी) भारतीय राजकुमारों तथा उनके निष्ठावान् अमात्यों एवं पुरोहितों के साथ प्रशान्त महासागरीय द्वीप-समूहों में भी पहुँची तथा उन द्वीपों की बोलियों के साथ समन्वित होकर उत्कृष्ट साहित्य की भाषा बनी। सुवर्णद्वीप (जावा तथा बाली), चम्पा (वियतनाम), कम्बुज (कम्बोडिया), कटाह द्वीप (केड्डाह, मलेशिया), श्याम (थाईलैण्ड) तथा सुवर्णभूमि

(म्यामार) आदि द्वीपों में आज भी संस्कृत अथवा संस्कृतबहुल उन द्वीपों की स्थानीय भाषाओं में अपार मूल्यवान् साहित्य सुरक्षित मिलता है।

वैदिक-साहित्य सर्वाधिक प्राचीन माना जाता है जो मन्त्रात्मक है। ये मन्त्र मुख्यत: तीन प्रकार के हैं - ऋक्, यजुष् तथा सामन्। जिन मन्त्रों में देवस्तुतियाँ संकलित हैं वे **ऋक्** कहे जाते हैं। इन ऋचाओं का वेद ही **ऋग्वेद** कहा जाता है। इस वेद में 10 मण्डल 85 अनुवाक् तथा 10580 ऋचायें हैं। यज्ञ-याग की प्रक्रिया जिनमें बताई गई है, वे मन्त्र **यजुष** कहे जाते हैं और **यजुष** मन्त्रों का संग्रह **यजुर्वेद** के नाम से विख्यात है। साम का अर्थ है— देवताओं को (संगीतात्मक माधुरी से) प्रसन्न करने वाले मन्त्र—*सामयति प्रीणयति देवान् इति साम*। इन्हीं साममन्त्रों का संग्रह **सामवेद** है।

कालान्तर में महर्षि अथर्वा एवं अंगिरा ने ऐसे अवशिष्ट मन्त्रों का भी एक पृथक् संकलन तैयार किया जिनमें अनेक लोकोपयोगी विषयों का प्रतिपादन था जैसे—भैषज्य, विषापहार, प्रशासन, आभिचारिक कर्म आदि। यह वेद अपने संकलयिता के ही नाम पर **अथर्ववेद**, आथर्वण-संहिता अथवा अथर्वाङ्गिरस संहिता के नाम से विख्यात हुआ।

इस प्रकार वेद को 'त्रयी' अथवा वेदचतुष्टयी के रूप में प्रसिद्धि प्राप्त है। वेदों की भाषा अत्यन्त रहस्यमय है। यही कारण है कि विभिन्न सम्प्रदायों तथा दृष्टियों वाले आचार्यों ने वेदमन्त्रों का स्वाभीष्ट अर्थ किया है। यदि आचार्य सायण की दृष्टि इतिहासपरक है तो स्वामी दयानन्द की इतिहासाभावात्मक। इसी प्रकार कुछ आचार्य नैरुक्त दृष्टि के पोषक हैं तो कुछ प्रतीकात्मक दृष्टि के।

जो भी हो, परन्तु इसमें कोई संशय नहीं कि वेद समस्त विद्याओं के मूलस्रोत हैं। प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाणों से भी कथमपि सिद्ध न होने वाले तथ्यों की भी सिद्धि वेद से ही संभव है-

प्रत्यक्षेणाऽनुमित्या वा यस्तूपायो न बुध्यते।
एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता॥

वैदिक कविता का स्वर विश्वमंगलात्मक है। सांमनस्यसूक्त में अत्यन्त सरस लोकतांत्रिक भावनाओं की अभिव्यक्ति हुई है। ऋषि यह

संकल्प व्यक्त करता है कि हम एक साथ चलें, एक जैसी वाणी बोलें, एक जैसा चिन्तन करें!

सङ्गच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते॥

वैदिक ऋषि समस्त इन्द्रियों की अक्षत सामर्थ्य के साथ सौ वर्ष जीने की आकांक्षा व्यक्त करता है तथा देवताओं से प्रार्थना करता है कि वे उसके आयुष्य को मध्यमार्ग में ही खण्डित न करें।

शतमिन्नु शरदो अन्ति देवा
यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति
मा नो मध्या रीरिषत आयुर्गन्तोः॥

इसी प्रकार अभयसूक्त में हमें सम्पूर्ण संसार से निर्भय रहने का संदेश दिया गया है। सारे संसार को स्वयं से भी निर्भय रहने की आश्वस्ति, वेदमन्त्रों में बार-बार दुहराई गयी है। यह कहा गया है कि हम मित्र की दृष्टि से सम्पूर्ण विश्व को देखें-

''मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।''

वेदमन्त्रों में विश्वबन्धुत्व की भावना पर बल दिया गया है तथा अनेकता में भी एकता स्थापित की गयी है। सम्पूर्ण विश्व को ही आर्य बनाने (संस्कारसम्पन्न बनाने) का दृढ़ संकल्प व्यक्त किया गया है। वस्तुतः वैदिक कविता का फलक अत्यन्त विस्तृत है। उसमें प्रकृति के नयनाभिराम दृश्य, सजीव बिम्बयोजनायें, कौटुम्बिक सुखोल्लास, सामाजिक उत्सव तथा राष्ट्रीय योग-क्षेम सब कुछ यथावसर, यथाप्रसंग वर्णित किया गया है।

परवर्ती युग में स्वतन्त्र रूप से विकसित होने वाले समस्त दर्शन एवं शास्त्र वेदमन्त्रों के ही गर्भ से अंकुरित दीखते हैं। एक ओर देवासुर-संग्राम के महानायक इन्द्र के असुर-विरोधी रणाभियानों में प्रतिरक्षाविज्ञान का सूक्ष्म चित्रण मिलता है तो दूसरी ओर सूर्या-सोम के विवाह-प्रसंग में विवाह-संस्कार का मनोरम चित्रण। द्यूतकरसूक्त में यदि वैदिकयुग की

जनवादी चेतना का साफ-सुथरा वर्णन है तो वाक्सूक्त एवं शिवसंकल्पसूक्त में आध्यात्मिक चेतनाओं का चित्रण।

अथर्ववेद का पृथ्वीसूक्त, इस सन्दर्भ में विशेष उल्लेखनीय है जिसमें राष्ट्रदेवता की अवधारणा के दर्शन होते हैं। संभवतः सम्पूर्ण विश्ववाङ्मय में यह प्राचीनतम सन्दर्भ है जिसमें भूमि को वात्सल्यमयी जननी के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

वेदों का वाङ्मय विशाल है। महाभाष्यकार पतंजलि (ई. पू. दूसरी शती) ने अपने महाभाष्य में ऋग्वेद की 21, यजुर्वेद की 101, सामवेद की 1000 तथा अथर्ववेद की 9 शाखाओं का उल्लेख किया, जो सम्भवतः उस युग में उपलब्ध थीं। उनके जीवनकाल में तो गाँव-गाँव में काठक एवं कालापक शाखायें पढ़ाई जाती थीं (ग्रामे-ग्रामे काठकं कालापकं प्रोच्यते) परन्तु काल के क्रूर प्रवाह तथा विदेशी आक्रमणों ने ज्ञान-विज्ञान की उस विपुल राशि को विनष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप आज मात्र 21 वेद शाखायें ही उपलब्ध होती हैं।

वेदों के अनन्तर आर्षकाव्यों- रामायण एवं महाभारत का क्रम आता है। रामायण के आदि प्रणेता महर्षि वाल्मीकि हैं जिन्हें भारतीय परम्परा कथानायक राम का समसामयिक स्वीकार करती है। पौराणिक साक्ष्यों के अनुसार कथानायक राम वर्तमान मन्वन्तर के 24वें त्रेता एवं द्वापर युगों की सन्धिवेला में उत्पन्न हुए थे। वे अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र, राजर्षि विदेह जनक के जामाता तथा भूमिपुत्री सीता के पति थे। उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया है क्योंकि उनके चरित्र में समस्त सामाजिक सम्बन्धों की अन्विति एवं चरितार्थता परिपूर्ण मर्यादा के साथ दीखती है।

रामायण में कुल छः काण्ड तथा 24000 श्लोक हैं। सातवाँ उत्तरकाण्ड, कथा की एकता की दृष्टि से विशृंखलित-सा है, अतएव प्रक्षिप्त भी माना जाता है। रामायण में पदबन्ध की मञ्जुलता के साथ अभिजात संस्कृत कविता का अनेकविध साहित्यिक सौन्दर्य दिखायी पड़ता है। इस काव्य में प्रयुक्त भाषा सालंकार तो है परन्तु अलंकारों के दुर्वह भार से बोझिल नहीं है। भाषा में भावसंवेदना की गहराई देखते ही बनती है।

लालिमा से ओतप्रोत सन्ध्या तथा प्रकाशमान दिवस परस्पर आमने–सामने हैं (नायक–नायिका की तरह) परन्तु विधाता की गति का क्या कहना? दोनों फिर भी मिल नहीं पाते! दिन के जाने के बाद ही सन्ध्या उतर पाती है! इस प्राकृतिक दृश्य के सहारे नायक–नायिका के पूर्णसम्भव मिलन को भी विघ्नित दिखा कर कवि भवितव्यता का प्राबल्य अत्यन्त आलंकारिक ढंग से सिद्ध करता है।

अनुरागवती सन्ध्या दिवसस्तत्पुरस्सरः।
अहो दैवगतिः कीदृक् तथापि न समागमः।।

प्राची दिशा में उदित होते चन्द्र का वर्णन तो अपने सजीव बिम्बों के कारण अत्यन्त कमनीय प्रतीत होता है –

हंसो यथा राजतपञ्जरस्थः
सिंहो यथा मन्दरकन्दरस्थः।
वीरो यथा गर्वितकुञ्जरस्थ–
श्चन्द्रोऽपि बभ्राज तथाऽम्बरस्थः।।

रामकथा–नायक राम का चरित्र अपने अनुकरणीय आदर्शों के कारण सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त हो गया। राम मातृपितृभक्त, बन्धुनिष्ठ, शरणागतवत्सल, सत्यवाक्, महावीर, आर्तरक्षक, धर्मपालक, ऋतसत्य के रक्षक, दुष्टसंहारक तथा सर्वानुग्रही महामानव हैं। उनके इस लोकवन्द्य रूप को सैकड़ों भारतीय एवं विदेशी भाषाओं के कवियों ने पूरी निष्ठा के साथ वर्णित किया। श्रीलंका में रामकेत्ति, थाईलैण्ड में रामकियेन, लाओस में फॉ लॉक–फॉ लॉम् (प्रिय लक्ष्मण प्रिय राम), मलेशिया में हिकायत महाराजा राम तथा जावा–बाली में रामायणककविन् के नाम से रामकथा की रचना हुई जो आज भी उन द्वीपों की धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक चेतना का मूलाधार है।

महाभारत भगवान् कृष्णद्वैपायन व्यास की कृति है जो वेदसंहिता के त्रिधा व्यवस्थापक एवं पुराणों के भी रचनाकार माने जाते हैं। सौ लघुपर्वों तथा 18 बड़े पर्वों में विभक्त प्रायः लक्ष श्लोकात्मक यह विशालग्रन्थ भारतीय इतिहास का प्रामाणिक स्रोत तो है ही, धर्म, दर्शन, अध्यात्म,

भूगोल, खगोल, ज्योतिष, तन्त्र, गणित, शालिहोत्र, गजविद्या, आलेख्य, रत्नविज्ञान, शकुनविज्ञान तथा समस्त लोकपरम्पराओं की व्याख्या करने वाला प्रामाणिक दस्तावेज भी है। इसीलिये महाभारत की प्रशंसा में कहा गया है–

'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।'

अर्थात् जो विषय इस ग्रन्थ में वर्णित है वही अन्यत्र भी है। परन्तु जो यहाँ वर्णित नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

महाभारत में कौरवों तथा पाण्डवों, जो मूलतः एक ही पिता की सन्तान थे, के धर्मयुद्ध का वर्णन है जिसमें मात्र 18 दिनों के महासंग्राम में 18 अक्षौहिणी सेना नष्ट हो गई। इस भीषण युद्ध के बाद सम्पूर्ण धरित्री वीरों से रिक्त–सी हो गई। परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की निष्पक्ष मध्यस्थता के बावजूद, कौरवप्रमुख दुर्योधन के हठ तथा राजा धृतराष्ट्र के विवेकहीन पुत्रमोह के कारण यह महाविनाश टल नहीं सका।

महाभारत केवल युद्ध की ही कथा नहीं है प्रत्युत अनेक विद्याशाखाओं का मूल उद्‍गम भी है। श्रीमद्‍भगवद्‍गीता, भीष्मस्तवराज तथा विष्णुसहस्रनाम जैसे परलोकसिद्धि–प्रवण ग्रन्थरत्न भी महाभारत के ही अंश हैं। धर्म के शाश्वत एवं चिरन्तन रूप के साथ ही साथ युगधर्म एवं आपद्धर्म का भी अद्‍भुत चित्रण महाभारत में हुआ है। युगधर्म अथवा आपद्धर्म का एक सन्दर्भ है–

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्य -
स्तस्मिंस्तथा वर्तितव्यं स धर्मः।
मायाचारी मायया वर्तितव्यः
साध्वाचारस्साधुना प्रत्युपेयः॥

पुनश्च

न नर्मयुक्तं वचनं हिनस्ति
न स्त्रीषु राजन् न विवाहकाले।
प्राणात्यये सर्वधनापहारे
पञ्चामृतान्याहुरपातकानि॥

सच्चे पण्डित की प्रज्ञा पर महाभारत में इस प्रकार प्रकाश डाला गया है–

शोकस्थानसहस्त्राणि भयस्थानशतानि च।
दिवसे दिवसे मूढमाविशन्ति न पण्डितम्।।

आर्षकाव्यों के साथ ही साथ पौराणिक वाङ्मय की भी प्रतिष्ठा हुई। भारतीय परम्परा में रामायण **आदिकाव्य** है तो महाभारत **इतिहास** तथा पुराण **धर्मग्रन्थ**। पुराणों के पाठ से धर्मसिद्धि मानी जाती है क्योंकि इनमें ऐतिह्य-तत्त्व गौण तथा धर्मतत्त्व प्रधान है। वस्तुतः पुराणों की रचना का मूल उद्देश्य था वेदमन्त्रों के गूढातिगूढ अभिप्रायों की उपाख्यानादि के माध्यम से उपदेशपरक व्याख्या करना–

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति।।

पुराणों की संख्या 18 है-मत्स्य, मार्कण्डेय, भागवत, भविष्य, ब्रह्माण्ड, ब्रह्म, ब्रह्मवैवर्त, वामन, वाराह, वायु, विष्णु, अग्नि, नारद, पद्म, लिङ्ग, गरुड, कूर्म तथा स्कन्दपुराण। निम्नश्लोक से इन महापुराणों का सांकेतिक परिचय मिल जाता है –

मद्वयं भद्वयं चैव ब्रत्रयं वचतुष्टयम्।
अनापल्लिङ्गकूस्कानि पुराणानि प्रचक्षते।।

पुराणों में भारत राष्ट्र की अखण्डता और एकता का निरूपण बहुत प्रभावशाली रूप में बार-बार किया गया है तथा भारत की सन्ततियों में एकता का सन्देश दिया गया है। कुछ उदाहरण देखें–

उत्तरं यत्समुद्रस्य हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।
वर्षं तद् भारतं नाम भारती यत्र सन्ततिः।। (*विष्णुपुराण 2/3/1*)

समुद्र से जो उत्तरदिशा में है और हिमालय से दक्षिणदिशा में है, उस देश का नाम भारत है; और वहाँ के लोगों को भारती (भारतीय) कहते हैं।

अत्रापि भारतं श्रेष्ठं जम्बूद्वीपे महामुने।
यतो हि कर्मभूरेषा ततोऽन्या भोगभूमयः।। (*विष्णुपुराण 2/3/22*)

हे महामुने! इस (सर्वश्रेष्ठ) जम्बूद्वीप में भी भारतवर्ष सर्वश्रेष्ठ है। क्योंकि यह कर्मभूमि है। इसके अतिरिक्त सभी (देश) भोग-भूमियाँ हैं।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि
धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदमार्गभूते
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्।। (*विष्णुपुराण 2/3/24*)

यह सच है कि देवता (इस आशय के) गीत गाया करते हैं कि वे भाग्यशाली हैं जो स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग बने हुए भारतदेश में, अपने देवत्व की समाप्ति पर पुनः मनुष्य बनकर जन्म लेते हैं।

पौराणिक कविता का साहित्यिक सौन्दर्य विलक्षण है। भागवत पुराण का वेणुगीत, गोपीगीत, भ्रमरगीत, ऐलगीत, रुद्रगीत आदि सन्दर्भ तो उत्कृष्ट काव्य के उदाहरण हैं। कृष्ण के विरह में सन्तप्त उनकी राजमहिषियों की कुररी पक्षी के प्रति अभिव्यक्त, यह अन्यापदेशपरक उक्ति ललित अभिजात कविता का रूप प्रस्तुत करती है-

कुररि विलपसि, त्वं वीतनिद्रा न शेषे
स्वपिति जगति रात्र्यामश्वरो गुप्तबोधः।
वयमिव सखि! किञ्चिद्गाढनिर्भिन्नचेता
नलिननयनहासोदारलीलेक्षितेन।। (*भागवत. 20.90.15*)

श्रीमद्भागवत भारतीय दर्शन की ललित काव्यात्मक अभिव्यक्ति की दृष्टि से भी अनुपम है। हमारे ऋषियों की वाणी में सामाजिक समता और समान वितरण की व्यवस्था का सिद्धान्त भी यहाँ इस प्रकार व्यक्त हुआ है-

यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति।।

वस्तुतः रामायण-महाभारत (आर्षकाव्य) तथा पुराणों की भाषा **वैदिकभाषा** एवं **लोकभाषा** (पाणिनीय संस्कृत) के मध्यवर्ती सन्धि-काल की सूचक है। वेदभाषा की रहस्यमयता, बह्वर्थकता तथा रूपात्मक शिथिलताओं ने तद्युगीन वैयाकरणों को भाषारूप स्थिर करने की प्रेरणा

दी। आपिशलि, काशकृत्स्न, भागुरि, स्फोटायन तथा शाकल्यादि अनेक महर्षि इस कार्य में लगे थे परन्तु भाषापरिमार्जन का यह लक्ष्य पूर्ण हुआ महर्षि पाणिनि (ई. पू. सातवीं शती) की अष्टाध्यायी की रचना के साथ। मात्र चार हजार सूत्रों में पाणिनि ने विश्व की विशालतम भाषा का स्वरूप सदा के लिए स्थिर कर दिया। इस नई भाषा को विद्वानों ने **संस्कृत** कहा। आचार्य दण्डी ने भी इसी नाम की पुष्टि की–

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाख्याता महर्षिभिः।

महर्षि पाणिनि स्वयमेव उद्भट वैयाकरण होने के साथ ही साथ रससिद्ध कवि भी थे। उन्होंने **जाम्बवतीविजय** नामक ललित महाकाव्य का प्रणयन किया जिससे अनेक उद्धृत पद्य ग्रन्थों मे यत्र-तत्र मिलते हैं। वर्षा का तो विलक्षण वर्णन करते हैं पाणिनि! काली रात कृष्णा गाय है और चन्द्रमा उसका बछड़ा, जो बादलों के वन में कहीं खो गया है। बच्चे को न देख पाने के कारण वत्सला गाय **घनगर्जन** के बहाने रँभा-रँभा कर उसे बुला रही है।

गतेऽर्धरात्रे परिमन्दमन्दं
गर्जन्ति यत्प्रावृषि कालमेघाः।
अपश्यती वत्समिवेन्दुबिम्बं
तच्छर्बरी गौरिव हुङ्करोति॥

वररुचि (कात्यायन) अष्टाध्यायी के वार्तिककार हैं जिनका समय ई. पू. चौथी शती है। तत्प्रणीत **स्वर्गारोहण** तथा व्याडि-प्रणीत लक्षश्लोकात्मक **संग्रहग्रन्थ** का उल्लेख भी पातञ्जल महाभाष्य में है। वासवदत्ता, भैमरथी तथा सुमनोत्तरा नामक कृतियों का भी उल्लेख महर्षि पतञ्जलि करते हैं। इस प्रकार लौकिक संस्कृत कविता की एक अविच्छिन्न परम्परा हमें मौर्ययुग तक विकसित दीखती है।

इसके अनन्तर ही अभिजात-संस्कृत वाङ्मय (Classical Sanskrit Literature) का अभ्युदय-काल आता है जिसके प्रवर्तक नायक मुख्यतः कविकुलगुरु कालिदास हैं। वस्तुतः कालिदास प्रणीत वाङ्मय ही परवर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र (Sanskrit Rhetorics) की सर्जना का मूलाधार

बना। काव्यशास्त्रियों ने बन्ध अथवा रचना की दृष्टि से साहित्य को त्रिधा व्यवस्थित किया – पद्य, गद्य तथा मिश्र अथवा चम्पूकाव्य!

काव्यानन्द की ग्राह्यता के आधार पर भी साहित्य को दो रूपों में व्यवस्थित किया गया–श्रव्यकाव्य एवं दृश्यकाव्य। पद्य, गद्य तथा चम्पू आदि श्रव्यकाव्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि उनका आनन्द मुख्यतः श्रवणेन्द्रिय–ग्राह्य होता है। दस प्रकार के रूपक तथा 18 प्रकार के उपरूपक, जिसे अभिनेय, रूप अथवा रूपक भी कहते हैं–दृश्य के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि इनका आनन्द मुख्यतः दर्शनेन्द्रिय (नेत्र) ग्राह्य होता है। रूपक दस प्रकार के होते हैं –

नाटकमथ प्रकरणं भाणव्यायोगसमवकारडिमाः।
ईहामृगाङ्कवीथ्यः प्रहसनमिति रूपकाणि दश॥

समन्वित रूप से विचार करने पर कालिदासोत्तर संस्कृत–साहित्य चार प्रमुख रूपों में विभक्त दीखता है –

1. **पद्य काव्य** (महाकाव्य, खण्डकाव्य आदि)
2. **गद्य काव्य** (कथा एवं आख्यायिका आदि)
3. **चम्पू काव्य** (गद्य–पद्यमिश्रित कृतियाँ)
4. **दशरूपक** (सम्पूर्ण नाट्यवाङ्मय)

कालिदासयुग (ई. पू. प्रथम शती) से लेकर पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शती ई.) तक, अथवा यह कहा जाय कि तब से आज तक संस्कृत साहित्य की चारों धारायें अविच्छिन्न गति से विकसित होती रही हैं।

पद्यवाङ्मय में मुख्यतः, मुक्तक–युग्मक–सन्दानितक–कलापक एवं कुलक के अनन्तर, महाकाव्य–खण्डकाव्य आते हैं। कालिदास को सुकुमारमार्गी कवि माना गया है। इस शैली की कविता में भाव–संवेदना की प्रधानता तथा भाषा–सज्जा की गौणता रहती है। कालिदास इस कला में निष्णात कवि हैं। उन्होंने व्यञ्जनावृत्ति के सहारे अल्पाल्प शब्दों से विपुल अर्थ का प्रकाशन किया है। इस प्रकार की कविता अत्यन्त मर्मस्पर्शी होती है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है–

रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्
पर्युत्सुकीभवति यत्सुखितोऽपि जन्तुः।

तच्चेतसा स्मरति नूनमबोधपूर्वं
भावस्थिराणि जननान्तरसौहृदानि॥

इस कविता में कवि ने मनुष्य के मन की अत्यन्त सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है। वैभव-उल्लास के वातावरण में आदमी का बुझा-बुझा-सा रहना, दुःखवादी बना रहना निश्चय ही उसके पूर्वजन्म के निसर्ग को घोषित करता है।

कालिदास ने दो महाकाव्य कुमारसम्भवम् तथा रघुवंशम्, तीन नाटक-मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा दो खण्डकाव्य-ऋतुसंहारम् एवं मेघदूतम् का प्रणयन किया। कालिदासयुगीन अन्य कवियों में प्रमुख हैं- अश्वघोष, अभिनन्द, कुमारदास, भर्तृमेण्ठ, मातृदत्त आदि।

छठी शती ई. में विद्यमान महाकवि भारवि के साथ अलंकारमार्गी संस्कृतकविता का प्रारंभ हुआ जिसका उद्देश्य था अलंकारों एवं चित्रबन्धों द्वारा। काव्य के भाषापक्ष का यथासंभव पोषण रामायण, महाभारत तथा पुराणों के अत्यन्त संक्षिप्त कथासूत्रों को लेकर, कलात्मक विस्तार के साथ विशाल महाकाव्यों की सर्जना का दौर प्रारंभ हुआ। भारवि-प्रणीत किरातर्जुनीयम्, माघ-प्रणीत शिशुपालवधम्, रत्नाकरकृत हरविजयम्, श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम्, कविराजकृत राघवपाण्डवीयम् आदि कृतियाँ अलंकारमार्गी काव्यशैली से ही जुड़ी हैं।

गद्यरचना में कथा एवं आख्यायिका को विशेष कीर्ति मिली। कथा कल्पनाश्रित होती है तथा आख्यायिका इतिहासाश्रित। दण्डीकृत दशकुमारचरितम् तथा अवन्तिसुन्दरीकथा, सुबन्धुप्रणीत वासवदत्ता, बाणभट्टप्रणीत कादम्बरी, धनपालप्रणीत तिलकमंजरी, सोड्ढलकृत उदयसुन्दरीकथा संस्कृत की गद्यात्मक कथाकृतियाँ हैं। इसी प्रकार बाणभट्टकृत हर्षचरितम्, वामनभट्टबाणकृत वेमभूपालचरितम् तथा अम्बिकादत्तव्यासकृत शिवराजविजयम् प्रमुख आख्यायिकायें हैं। कथाकृतियों में कवियों ने अपने युग के समाज को बड़ी ईमानदारी के साथ प्रतिबिम्बित किया है।

बाणभट्ट इन गद्यकारों में शिरोरत्न हैं। उन्होंने अभिप्रायों की नूतनता, उत्कृष्ट पद्यबन्ध का आदान, कोमलश्लेष, स्फुट रसप्रतीति तथा निर्दोष पदबन्ध (भाषा) को ही अपनी गद्यशैली का आदर्श निश्चित किया–

नवोऽर्थो जातिरग्राम्या श्लेषोऽक्लिष्टः स्फुटो रसः।
विकटाक्षरबन्धश्च कृत्स्नमेकत्र दुष्करम्॥

इन आदर्शों के पालन से बाण ने अप्रतिम गद्य की रचना की जिसके कारण उन्हें अक्षय कीर्ति मिली – **बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्**।

पद्य एवं गद्य के अनन्तर नाट्यवाङ्मय का क्रम आता है। वस्तुतः समूची काव्यपरम्परा में नाट्य को विशिष्ट माना गया –

काव्येषु नाटकं रम्यम्।

नाट्य अथवा नाटक की रम्यता का कारण है उसके द्वारा दो–दो इन्द्रियों (श्रवणेन्द्रिय एवं दर्शनेन्द्रिय) का युगपत् आसेचन। नाटक में यह कार्य संभव होता है अभिनय के माध्यम से। कालिदास की नाट्यकृतियाँ संस्कृत नाट्यवाङ्मय का सर्वस्व हैं। विशेषतः उनकी अमर नाट्यकृति अभिज्ञानशाकुन्तलम्! पात्रों के चरित्रचित्रण, मर्यादा निर्वहण (Poetic Justice) नाटकीय–मोड़ो की सृष्टि, (Poetic Situations) में कालिदास अप्रतिम हैं। उनकी नाट्यभाषा भी माधुर्य, प्रसाद तथा लालित्य गुणों से सम्पन्न है।

कालिदास के बाद अश्वघोष, विशाखदत्त, दिङ्नाग, भट्टनारायण, भवभूति, हर्ष आदि का नाम संस्कृत नाट्यसाहित्य में उल्लेखनीय है। इनमें भवभूति का नाम सर्वाधिक प्रसिद्ध है। उन्होंने तीन नाटकों की रचना की है– मालतीमाधव, महावीरचरित और उत्तररामचरित। इनमें उत्तररामचरित सर्वश्रेष्ठ है। यह वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड की कथा पर आधारित है। इसमें करुण रस की अत्यन्त सुंदर एवं मार्मिक निष्पत्ति देखने योग्य है। भवभूति में यद्यपि कालिदास की–सी सरलता और सहजता नहीं है फिर भी नाट्यसाहित्य में उन्हें कालिदास के समान ही सम्मान मिलता है। आदर्श वैवाहिक जीवन के चित्रण में भवभूति पारंगत हैं। राम और सीता के कोमल एवं पवित्र प्रेम का चित्रण भी उत्तररामचरित की विशिष्टता है।

संस्कृत नाटकों की प्रमुख विशेषता उनका सुखांत होना है। सम्पूर्ण नाटक में यद्यपि सुख और दु:ख का सम्मिश्रण दृष्टिगोचर होता है, तो भी उसका अंत सुखांत ही होता है। सुख के उपपादन के लिए ही नाटक में दु:ख का निष्पादन होता है। इसके पीछे भारतीय चिंतन ही मुख्य है। प्राचीन भारत के निवासी आशावादी थे। उनके अनुसार जीवन में दु:ख की परिणति सदैव सुख और परमानंद में होती है।

संस्कृत नाटकों में संवाद के लिए प्राय: गद्य का ही प्रयोग होता है परंतु रोचकता, प्रकृतिवर्णन, नीतिशिक्षा आदि के लिए पद्य के प्रयोग को महत्व दिया जाता है। संस्कृत के साथ-साथ प्राकृत भाषाओं का प्रयोग भी संस्कृत नाटकों में मिलता है। सभी प्रकार के पात्र संस्कृत समझते तो हैं किंतु अपने-अपने सामाजिक स्तर के अनुरूप संस्कृत या प्राकृत बोलते हैं। नायक के मित्र के रूप में विदूषक की कल्पना संस्कृत नाटकों की एक उल्लेखनीय विशेषता है। इन नाटकों में अभिनय संबंधी संकेत, यथा-**प्रकाशम्, स्वगतम्, जनान्तिकम्, सरोषम्, विहस्य** इत्यादि सूक्ष्मता के साथ दिए जाते हैं। मनोरंजन के साथ-साथ नैतिकता और उच्च आदर्शों का जनमानस में संचार करना भी संस्कृत-नाटकों का एक लक्ष्य है। लौकिक और अलौकिक सभी प्रकार के पात्र इनमें होते हैं। प्रकृति-वर्णन संस्कृत-नाटकों की एक बड़ी विशेषता है।

प्रस्तुत संकलन की पृष्ठभूमि

संस्कृत के अखिल भारतीय महत्त्व को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्त्वावधान में वरिष्ठ माध्यमिक स्तर पर केन्द्रिक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत वैकल्पिक विषय के रूप में संस्कृत पढ़ने वाले छात्रों के लिए प्रस्तुत संकलन का संपादन किया गया है।

विद्यालयीय शिक्षा के लिए दिल्ली स्थित 'राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्' (एन. सी. ई. आर. टी) द्वारा आयोजित संगोष्ठी में उपस्थित अध्यापकों एवं विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा समवेत रूप से **राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005** पर गहन विचार-विमर्श किया गया। इन

लक्ष्यों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है–भारमुक्त शिक्षा। विद्वानों का अनुभव है कि पाठ्यग्रन्थों के दुरूह भार से बोझिल छात्र, एक बिन्दु पर पहुँच कर पाठ्यक्रम को भार अनुभव करने लगता है। पाठ्यक्रमों की विविधता, बहुलता तथा मात्राधिक्य–तीनों मिलकर छात्र की अध्ययन–अभिरुचि को प्राय: समाप्त ही कर देते हैं। अत: आवश्यक है कि छात्रों की अध्ययन–अभिरुचि को नित्य नवीन बनाने के लिए शिक्षा के पाठ्यक्रम को भारमुक्त किया जाये।

जब शिक्षा भारमुक्त होगी तो निश्चय ही वह स्वयमेव एक 'आनन्दप्रद अनुभूति' सिद्ध होगी। यह पाठ्यचर्या–2005 का दूसरा लक्ष्य है। आनन्द तभी प्राप्त होता है जब किसी कार्य में उद्वेग न हो, अरुचि न हो, थकान न हो। शिक्षा के भारमुक्त होने पर ये गुण स्वत: उद्भूत होंगे और तब छात्र स्वयं अपने पाठ्यक्रमों में आकृष्ट एवं अनुरक्त होगा। इस आनन्दवृद्धि के लिए पाठ्यक्रम में ऐसे ज्ञान–सन्दर्भों का समावेश किया जाना चाहिए जिनमें उदात्त जीवन मूल्य हों, घटना–वैचित्र्य के साथ ही साथ आधुनिक जनजीवन का प्रतिबिम्ब भी हो।

वस्तुत: शिक्षा एवं पाठ्यक्रम का यह पक्ष अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। संस्कृत का वाङ्मय वेदों से प्रारम्भ होकर आधुनिक युग तक व्याप्त है। वस्तुत: यह वाङ्मय भारतवर्ष के पिछले पाँच हजार वर्षों का एक जीवन्त दस्तावेज़ है जिसमें राष्ट्र का इतिहास, भूगोल, दर्शन, संस्कृति, सामाजिक उथल–पुथल, नित्य परिवर्तनशील जनजीवन–सब कुछ विद्यमान है।

ऐसी स्थिति में आवश्यक है कि प्राचीन ग्रन्थों से हम ऐसे ही अंश पाठ्यक्रम में समाविष्ट करें जिनमें आज का भी राष्ट्रीय एवं सामाजिक परिवेश समरस हो। श्रवण कुमार की मातृपितृभक्ति, हरिश्चन्द्र की सत्यनिष्ठा, वाल्मीकि–वर्णित ऋतुओं का शाश्वत सौन्दर्य तथा कथासरित्सागर, पञ्चतंत्र, हितोपदेश एवं पुरुषपरीक्षा आदि प्राचीन ग्रन्थों की शिक्षाप्रद कहानियाँ इसी प्रकार की हैं। इनका सन्दर्भ सार्वकालिक है अत: इनकी सम्प्रेषणीयता भी जैसी की तैसी है।

पाठ्यचर्या का तीसरा लक्ष्य भी यही निश्चित किया गया – जीवन के परिवेश से शिक्षा का घनिष्ठ संबंध। इस लक्ष्य की पूर्ति तभी हो

सकेगी जब संकलित पाठांशों एवं आधुनिक जीवनपरिवेश के बीच सेतु हो, अन्त:संबंध हों।

पाठ्यचर्या का चौथा लक्ष्य निश्चित किया गया – शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें यह ध्यान रखना होगा कि हमारी पाठ्यपुस्तकें सर्वथा निरवद्य हों, विवादमुक्त हों। संकलित पाठ राष्ट्रीय आदर्शों तथा संवैधानिक मान्यताओं के सर्वथा अनुकूल हों। पुरानी पाठ्यपुस्तकों में प्राय: 'मूलपाठ की रक्षा' के लोभवश उपर्युक्त तथ्यों की उपेक्षा की गई है। परन्तु आज का भारतीय समाज अत्यन्त संवेदनशील है। अत: यह ध्यान रखा ही जाना चाहिए कि किसी भी संकलित अंश से समाज के किसी भी वर्ग की भावना आहत न हो। पाठों से सर्वधर्म-समभाव, सर्वोदय तथा सामाजिक समानता आदि का समर्थन होना चाहिये। किसी भी वर्ग, जाति, समुदाय अथवा प्रवृत्ति की अवमानना नहीं होनी चाहिये और न ही किसी के प्रति प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रीति से कोई आक्षेप होना चाहिए। पाठ्यचर्या का अन्तिम लक्ष्य अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, विशेषकर संस्कृत पाठ्यक्रम के सन्दर्भ में! यह लक्ष्य है– छात्रों को चिन्तन के लिए प्रेरित करना। पाठ्यक्रम ऐसा बनाया जाना चाहिए जो छात्रों को स्वयं स्फूर्त बना सके। प्राय: शिक्षक छात्रों को 'निरुपाय' बनाता है यह कहकर कि 'कण्ठस्थ करने के अतिरिक्त और कोई उपाय नहीं'।

शब्दरूप एवं धातुरूप कण्ठस्थ करते-करते अधिकांश छात्र निराश, कुण्ठित एवं हतप्रभ होकर संस्कृताध्ययन से विरत हो जाते हैं। छात्रों में एक भ्रम सा व्याप्त हो जाता है कि संस्कृत में सब कुछ रटने से ही सिद्ध होगा। जबकि ऐसा कतई नहीं है। कौन ऐसी भाषा है जिसमें छात्र महत्त्वपूर्ण अंशों को कण्ठस्थ नहीं करता? विद्या का कण्ठस्थ होना तो प्रशंसनीय बात है, इसकी निन्दा कैसी?

परन्तु संस्कृत भाषा में प्रवीण होने के लिए सब कुछ रट डालने की कोई आवश्यकता नहीं। आवश्यकता है तो केवल इस बात की कि छात्र सर्वत्र 'अध्यापकाश्रित' ही न हो। वह स्वयं भी कुछ सोचना विचारना अथवा करना सीखे। किसी पाठ को पढ़कर वह इतना समर्थ हो जाये कि

पाठाश्रित लघुप्रश्नों का उत्तर दे सके, किसी अंश का आशय बता सके, रिक्त स्थानों की पाठ्यांश के आधार पर पूर्ति कर सके, प्रकृति–प्रत्यय का समुचित मेलन कर सके तथा योग्यता–विस्तार के अन्यान्य मानकों को भी आत्मसात् कर सके।

निष्कर्ष यह है कि संस्कृताध्यायी छात्र का संस्कृत के साथ नीर–क्षीर सम्बन्ध होना चाहिए न कि तिल–तण्डुलवत् संसृष्टि! यदि छात्र 'संस्कृतमय' नहीं हुआ, उसकी संस्कृत समझने, लिखने, बोलने की क्षमता विकसित नहीं हो पाई तो फिर संस्कृत पढ़ने का लाभ क्या हुआ? यह सब संभव है पाठ्यचर्या के उपर्युक्त लक्ष्यों को अपनाने से।

उपर्युक्त लक्ष्यों को चरितार्थ एवं अनुप्रयुक्त करने की दृष्टि से ही 'नवीन पाठ्यक्रम' की संकल्पना की गई तथा नये मानदण्डों के आधार पर छठी, नवीं, तथा ग्यारहवीं कक्षा के छात्रों के लिए नई पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया गया है। इन पुस्तकों का प्रमुख वैशिष्ट्य है–

क – प्राचीन ग्रन्थांशों के साथ ही साथ आधुनिक संस्कृत रचनाओं का भी समावेश।

ख – अन्य भारतीय भाषाओं के साहित्य की विविध अनूदित (संस्कृत) रचनाओं का भी पाठ्यक्रम में समावेश।

ग – पाठ्यचर्या के विविध लक्ष्यों की पूर्ति हेतु नये अभ्यासप्रश्नों, टिप्पणियों एवं योग्यता विस्तार–उपायों का समावेश।

घ – शिक्षण–संकेतों का निर्देश।

पाठ्यचर्या के लक्ष्यों को दृष्टि में रखकर सुधी प्राध्यापकों एवं विषय–विशेषज्ञों के समवेत प्रयास से निर्मित प्रस्तुत पाठ्यपुस्तक निश्चय ही संस्कृताध्ययन के क्षेत्र में एक शुभारंभ है। यह पाठ्यक्रम संस्कृताधीती छात्रों में उन गुणों को विकसित करेगा जो पाठ्यचर्या के लक्ष्यरूप में विन्यस्त किये गये हैं।

प्रस्तुत संकलन में मङ्गलाचरण के अतिरिक्त कुल दस पाठ संकलित है। मङ्गलाचरण के प्रथम मन्त्र में समूची सृष्टि की ईश्वरमयता का प्रतिपादन करते हुए, त्याग के माध्यम से ही भोग का उपदेश दिया गया

है। दूसरा मङ्गलात्मक मन्त्र ऋग्वेद के दशम मण्डल में विद्यमान सौमनस्य सूक्त से आहृत है जिसमें लोकतन्त्रात्मक चेतना की व्याख्या करते हुए बताया गया है कि हमारा मन्त्र (विचार), मन (संकल्प) तथा समिति (निर्णय) समान होना चाहिए, क्योंकि विचारों की एकता, भोगों की समानता तथा समरसता में ही वास्तविक सुख है। मङ्गल-परम्परा के अन्त में शान्तिपाठ प्रस्तुत है जो यजुर्वेद के 36वें अध्याय से गृहीत है। इसमें द्युलोक, अन्तरिक्ष, पृथ्वी, ओषधि, वनस्पति, विश्वेदेव तथा सर्वव्यापक ब्रह्म की शान्ति (आनुकूल्य) की कामना की गई है।

प्रथम पाठ **कुशलप्रशासनम्** वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड के सौवें सर्ग से संकलित है। इस पाठ में स्फटिकनिर्मल भ्रातृस्नेह के साथ प्रशासनिक सिद्धांतों का भी सुन्दर निदर्शन है। रामवनगमन से सन्तप्त भरत जब, पश्चात्ताप-विधुर भाव से उन्हें मनाने के लिए पुर-परिजन सहित चित्रकूट पहुँचते हैं तो उदारहृदय राघव उन्हें दौड़कर छाती से लगा लेते हैं। राम सत्यवेत्ता हैं, बन्धुप्रणयी हैं तथा परचित्तज्ञ हैं। वे जानते हैं कि उनके वन गमन प्रकरण में निश्छल भरत की कोई भूमिका नहीं है। फलतः वे भाई भरत को सन्तप्त देख स्वयं भी टूट-बिखर जाते हैं फिर भी विवर्णवदन धूलिधूसरित, कृशकाय बन्धुरत्न भरत को सान्त्वना देते हैं। वे भरत के कुशल-प्रश्न के माध्यम से आदर्श प्रशासन की नीतियों को उपस्थापित करते हैं।

कुशलप्रश्न में मर्यादापुरुषोत्तम राम का विराट् व्यक्तित्व अभिव्यक्त होता है। वह जितेन्द्रिय, कुलीन, शूर, श्रुतवान् तथा वशंवद आमात्यों के विषय में, तथा स्वयं भरत की दैनन्दिन वृत्तियों के विषय में पूछते हैं। वस्तुतः राम द्वारा पूछे गए कुशल-क्षेम समाचारों में ही आदर्श मानवजीवन-चर्या प्रतिबिम्बित है।

द्वितीय पाठ **सौवर्णो नकुलः** महर्षि व्यास-प्रणीत शतसाहस्री संहिता महाभारत के आश्वमेधिक पर्व (अध्याय 92-93) से संकलित किया गया है। इस पाठ में ऐश्वर्य-वैभव की तुलना में निरहंकार-निरभिमान दैन्यवृत्ति के महत्व को रेखांकित किया गया है।

महाभारत-युद्ध में विजयश्री प्राप्त करने के बाद महाराज युधिष्ठिर

अश्वमेध – यज्ञ सम्पन्न करते हैं। यज्ञ की समाप्ति होने पर एक नकुल, जिसका आधा शरीर सुवर्णमय था, यज्ञभूमि में आकर लोटने लगता है तथा मानववाणी में ऋत्विजों से कहने लगता है कि यह यज्ञ उस ब्राह्मण के सक्तुप्रस्थ यज्ञ के तुल्य नहीं है जिसमें सक्तुस्पर्श मात्र से मेरा आधा शरीर काञ्चनवर्ण हो गया था।

आश्चर्यचकित याज्ञिकों के सोत्कण्ठ पूछने पर नकुल एक ब्राह्मण के यज्ञ का वर्णन करता है जिसने पूर्ण सात्त्विकता निरहंकारता तथा वदान्यता–शरणागतवत्सलता का पालन करते हुए त्यागपूर्वक यज्ञ सम्पन्न किया था।

सूक्तिसुधा नामक तृतीय पाठ में सदुपदेशपरक सुभाषितों का संग्रह किया गया है जो चाणक्यनीति तथा हितोपदेश से समुद्धृत हैं। सुभाषित ऐसे पद्य को कहते हैं जिसमें जीवनचर्या के किसी पक्ष विशेष को, उपदेशमुखेन उद्भासित किया जाता है। इन सुभाषित पद्यों में शाश्वत सत्य अथवा जीवनामृत–रसायनतत्त्व, अत्यन्त मार्मिक पदावली में अभिव्यक्त होता है, मनुष्य को कैसे देश में रहना चाहिए, कौन मनुष्य का सच्चे अर्थों में बन्धु होता है, सत्संगति का महत्त्व क्या है, मनस्वी व्यक्ति की जीवनचर्या कैसी होती है, मानवजीवन के त्याज्य दोष कौन हैं तथा जीवलोक के छह सुख कौन–कौन हैं – इन विषयों का संकलित सुभाषितों में रुचिकर प्रतिपादन किया गया है।

ऋतुचर्या शीर्षक चतुर्थ पाठ आयुर्वेद के प्रख्यात आकरग्रन्थ **चरकसंहिता** के छठे अध्याय से लिया गया है। यद्यपि ऋतुवर्णन के सन्दर्भ रामायण महाभारत तथा परवर्ती काव्यों में भी पूर्ण साहित्य–सौन्दर्य, कोमल कल्पना एवं जीवन बिम्ब के साथ वर्णित हैं। परन्तु चरक–वर्णित ऋतुचर्या का कुछ और ही विलक्षण महत्त्व है क्योंकि आचार्यश्री ने ऋतुओं का वर्णन स्वास्थ्य एवं आरोग्य की दृष्टि से किया है।

किस ऋतु में कैसी दिनचर्या होनी चाहिए, कैसा अशन–पान तथा पथ्य होना चाहिए, इसका अत्यन्त सटीक वर्णन संकलित पद्यांशों में किया गया है जो आज भी प्रासंगिक प्रतीत होता है। हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा तथा शरद् के वर्णनमात्र में आचार्य चरक उन ऋतुओं के

सम्भाव्य रोगों से पाठकों को सावधान करते हुए, ग्राह्यचर्या का उपदेश देते हैं।

वीरः सर्वदमनः शीर्षक पञ्चम पाठ कविकुलगुरु कालिदास प्रणीत विश्वप्रसिद्ध अमर नाट्यकृति **अभिज्ञानशाकुन्तलम्** के सप्तमाङ्क से संकलित किया गया है। इसमें दुष्यन्त एवं शकुन्तला के पुत्र सर्वदमन का अत्यन्त पराक्रमपूर्ण निर्भय शैशव रोचक शैली में वर्णित किया गया है।

दुर्वासा शाप–व्यामूढ दुष्यन्त द्वारा भरे दरबार में अपमानित एवं तिरस्कृत उनकी पत्नी शकुन्तला, अपनी जन्मदात्री मेनका अप्सरा के प्रयत्न से हेमकूट पर्वत स्थित मारीचाश्रम में रहने लगती है जहाँ सर्वदमन का जन्म होता है।

देवासुरसंग्राम में देवराज इन्द्र के सहायतार्थ स्वर्गलोक पहुँचे दुष्यन्त विजयोपरान्त लौटते हुए महर्षि मारीच एवं देवमाता अदिति को प्रणाम अर्पित करने उनके आश्रम में आते हैं तथा वीर सर्वदमन को देखते हैं जो सिंहशावकों के दाँत गिनने का यत्न कर रहा है। उसे सिंही के क्रोध का भी भय नहीं। दुष्यन्त बच्चे का शौर्य–पराक्रम तथा निर्भयता देख विस्मित हो उठते हैं।

अन्ततः जब उन्हें ज्ञात होता है कि वीर सर्वदमन उन्हीं का पुत्र है तो वह आनन्दविह्वल हो उठते हैं तथा पुत्र एवं पत्नी से समन्वित हो महर्षि–दम्पती को प्रणाम करते हैं।

शुकशावकोदन्तः शीर्षक षष्ठ पाठ वश्यवाणीचक्रवर्ती महाकवि बाणभट्ट प्रणीत कादम्बरी–कथा के कथामुख भाग से संकलित है। विदिशानरेश शूद्रक के दरबार में एक दिन चाण्डालकन्या द्वारा, उपहार– रूप में राजा को अर्पित करने के लिए, एक जातिस्मर शुकशावक लाया जाता है जो अपनी प्रशस्ति के ही अनुकूल, दाहिना पंजा (आशीः मुद्रा में) ऊपर उठा कर, राजा की प्रशंसा में एक अत्यन्त ललित एवं साभिप्राय 'आर्या' पढ़ता है जिसे सुनते ही विदिशानरेश विस्मित हो उठते हैं।

उत्कण्ठित एवं विस्मयविमुग्ध राजा के द्वारा परिचय पूछने पर शुकशावक वैशम्पायन, महर्षि जाबालि द्वारा सुनाई गई अपनी आत्मकथा को यथावत् प्रस्तुत करता है। करुणा एवं अनुकम्पा, कृतज्ञता एवं

वशंवदता से ओतप्रोत, कौटुम्बिक स्नेह–वात्सल्य में अनुस्यूत शुकशावक की यह आत्मकथा हमें अश्रुविगलित बना देती है। जीवन की उच्चावच संवेदनाओं का अत्यन्त मार्मिक चित्रण इस गद्यांश में कवि ने किया है जो अप्रतिम है।

भव्यः सत्याग्रहाश्रमः शीर्षक सप्तम पाठ, विगत शताब्दी की विदुषी लेखिका तथा गाँधीविचारधारा की समर्थ कवयित्री श्रीमती पण्डिता क्षमाराव–प्रणीत **सत्याग्रहगीता** के चतुर्थ अध्याय से लिया गया है। 1926 ई. में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे, मोहनदास कर्मचन्द गाँधी के भारतीय स्वाधीनता–संग्राम का नेतृत्व संभालते ही स्वतंत्रता का संघर्ष तीव्र हो उठा था। गाँधी जी ने अहमदाबाद के समीप साबरमती नदी के तट पर सत्याग्रह–आश्रम की स्थापना की जो उनके विचारों तथा कृत्यों का केन्द्र बन गया। यहीं से उन्होंने सत्य–अहिंसा, सत्याग्रह, तथा सविनय अवज्ञा आदि के महामन्त्रों का उद्घोष तथा कार्यान्वयन किया जिससे हमें अन्ततः स्वतंत्रता प्राप्त हो सकी।

पण्डिता क्षमाराव ने उसी सत्याग्रह–आश्रम तथा अपनी आँखों देखी गतिविधियों का रोचक वर्णन प्रस्तुत पद्यांश में किया है। इस पाठ में महात्मा गाँधी की विचारधारा का प्रांजल रूप पढ़ने को मिलता है।

पण्डिता क्षमाराव अर्वाचीन संस्कृत काव्यधारा के साहित्यकारों में अत्यन्त सम्मानित कवयित्री हैं जिनका लेखन पारम्परिक होने के साथ ही साथ, परम्परामुक्त भी रहा है। उन्होंने अपनी कृतियों में विधवाविवाह, यौतकविरोध तथा बालविवाह–विरोध जैसी नई समाजिक प्रवृत्तियों को भी निर्भयता के साथ चित्रित किया है।

सङ्गीतानुरागी सुब्बण्णः शीर्षक अष्टम पाठ मूलतः कन्नड़ के ज्ञानपीठपुरस्कार मण्डित यशस्वी साहित्यकार **मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य** की कन्नड़ भाषा में प्रणीत लघु उपन्यासिका (Novelette) सुब्बणः के संस्कृत रूपान्तर से लिया गया है।

सुब्बणः मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य–प्रणीत कन्नड़ भाषा का एक लघु उपन्यास है। वेङ्कटेश अय्यङ्गार्य कन्नड़ लघुकथा परम्परा के जनक माने जाते हैं जिन्होंने बीसवीं शती ई. के द्वितीय दशक में सर्वप्रथम अपनी

रचना प्रकाशित की। स्वभावतः वह जॉन ऑस्टिन तथा चार्ल्स डिकेंस सरीखे अंग्रेजी उपन्यासकारों के प्रशंसक रहे तथा उसी औपन्यासिक आदर्श पर कन्नड़ में रचना करते रहे।

सुब्बण्णः मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार का एक ऐसा लोकप्रिय तथा मर्मस्पर्शी उपन्यास है जिसमें मध्यवर्गीय संयुक्त परिवार की सामाजिक बुराइयों तथा पारिवारिक उपेक्षाओं का विश्वसनीय चित्रण किया गया है। कथानायक सुब्बण्ण के पिता राजाश्रय प्राप्त एक श्रेष्ठ विद्वान् हैं परन्तु बालक सुब्बण्ण की अभिरुचि पिता से भिन्न है। वह सङ्गीतानुरागी है। पिता पुत्र का यह मनोद्वेष जब शिखरस्थ होता है तो असहिष्णु सुब्बण्ण अपनी पत्नी एवं बच्ची के साथ, एक दिन चुपचाप घर छोड़ देता है और कलकत्ता पहुँच जाता है। यद्यपि उसके कुछ वर्ष वहाँ सुख से बीतते हैं परन्तु भाग्य की निष्ठुरता, पत्नी एवं बच्ची को छीन कर उसे निपट एकाकी बना देती है। अन्ततः कलकत्ता महानगर में जीवन से वितृष्ण एवं मोहभग्न होकर सुब्बण्ण, माता–पिता तथा सगे–सम्बन्धियों के चिरवियोग से सन्तप्त हुआ पुनः अपने गाँव लौटता है तथा गाँव के बच्चों को निःशुल्क सङ्गीत की शिक्षा देता, शान्तिपूर्वक मृत्यु का वरण करता है।

ज्ञानपीठ पुरस्कार से श्रीमण्डित मास्ति वेङ्कटेश की इस कालजयी कृति का संस्कृत अनुवाद विद्वान् एच्. एन्. वेङ्कटेश शर्मा शास्त्री ने किया है जो शिमोगा जनपद के होसहल्लीमथूर नामक गाँव में पैदा हुए तथा कर्नाटक राज्य के शिक्षाविभाग में पण्डित के रूप में हजारों लोगों को संस्कृत की शिक्षा देते रहे हैं। अखिल कर्नाटक–संस्कृत परिषद् बंगलौर द्वारा यह लघु उपन्यास प्रथम बार 1993 ई. में प्रकाशित किया गया है।

नवम पाठ **वस्त्रविक्रयः** म. म. पं. मथुराप्रसाद दीक्षितकृत **भारतविजयनाटकम्** के प्रथम अंक से लिया गया है।

बीसवीं सदी के प्रारम्भिक चरण में जिन श्रेष्ठ साहित्यकारों ने अपनी कृतियों से संस्कृत–वाङ्मय को समृद्ध किया उनमें पं. अम्बिकादत्त व्यास, हरिदास सिद्धान्तवागीश, भट्ट मथुरानाथ शास्त्री, म. म. पं. रामावतार शर्मा, पण्डिता क्षमाराव, वाई. महालिङ्ग शास्त्री तथा मूलशंकर माणिक्य लाल याज्ञिक आदि प्रमुख हैं।

म. म. पं. मथुराप्रसाद दीक्षित सोलन-नरेश (सम्प्रति हिमाचलप्रदेश का जनपद-विशेष) के सम्मानित राजकवि थे जिन्होंने ब्रिटिश शासनकाल में भी पूरी निर्भयता एवं निरंकुशता के साथ स्वाधीनता को समर्थन करने वाले **भारतविजय** नामक क्रान्तिकारी उत्प्रेरक नाटक का प्रणयन 1937 ई. में किया । इस नाट्यकृति की विलक्षण विशेषता यही है कि इसमें क्रान्तदर्शी कवि ने **भारत की स्वाधीनता-प्राप्ति** का चित्रण 1947 ई. से एक दशक पूर्व ही अपनी क्रान्त प्रतिभा के बल पर किया। चिरकाल तक यह रचना शासन द्वारा जब्त रही; स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ही इसका प्रकाशन हो सका।

मुगल बादशाह शाहआलम से बंगाल और बिहार की मालगुजारी वसूलने का अधिकार प्राप्त कर गौराङ्ग अधिकारी प्रजा पर अत्याचार करने लगते हैं। जब भारतीय जुलाहे, परम्परानुसार अपना वस्त्र बेचने बाजार में आते हैं तो ये अंग्रेज अफसर, शाही फरमान दिखाकर सारा वस्त्र, अत्यन्त सस्ते दाम पर स्वयं खरीद लेते हैं तथा उन्हें सेठ-साहूकारों तक नहीं जाने देते । इस प्रकार भारतीय जुलाहों की सारी अर्थ-व्यवस्था नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है तथा वे गरीबी की मार झेलने को विवश हो जाते हैं।

प्रस्तुत पाठ में इसी सन्दर्भ का मर्मस्पर्शी वर्णन नाट्यकार द्वारा किया गया है। वस्तुतः यह पाठ हमें भारतीय स्वाधीनता-संघर्ष की पृष्ठभूमि से परिचित कराता है।

यद्भूतहितं तत्सत्यम् नामक दशम पाठ मूलतः एक शिक्षाप्रद लघु कथा है। प्रस्तुत लघुकथा डॉ. केशवचन्द्र दाश के लघुकथासंग्रह **'एकदा'** से संकलित की गई है। श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्वविद्यालय, पुरी के न्यायदर्शनविभागाध्यक्ष बहुश्रुत विद्वान् आचार्य केशवचन्द्र दाश ने अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय को अपनी जनवादी कविताओं तथा कथोपन्यासकृतियों से समृद्ध बनाया है। डॉ. दाश की प्रमुख कृतियाँ हैं- महान राशिरेखा, शिखा, विसर्गः, पताका, अञ्जलिः दिशा-विदिशा, शीतलतृष्णा, प्रतिपद् आदि।

'एकदा' में डॉ. दाश-प्रणीत दस लघु कथायें संकलित हैं। ये कथायें पितामही द्वारा अपने नाती माधव तथा नातिन पुलोमजा को सुनाई जाती हैं जो कथा सुनाने की प्राचीन भारतीय ग्रामीण-पद्धति है। ये कथायें संक्षिप्त होती हुई भी अत्यन्त भावगर्भित, मर्मस्पर्शी एवं रुचिवर्धक हैं।

मूलतः **'सत्यम्'** शीर्षक से संकलित प्रस्तुत कथा में यह बताया गया है कि 'जिससे लोकहित सिद्ध होता हो वही सत्य है।' गाँव के छोर पर स्थित पद्मिनी नामक पुष्करिणी के किनारे आश्रम में एक मुनि रहता था। वह ग्रामीणों तथा उनके पशुओं द्वारा पंकिल की गई पुष्करिणी की दीन-दशा देख अत्यन्त दुखी रहता था। वह निरन्तर यही सोचता रहता था कि इस बावली का उद्धार-संस्कार कैसे हो?

अकस्मात् एक सुवर्ण अवसर मुनि के हाथ लग ही गया। एक दिन गाँव वाले एक बच्चे को **'मिथ्याभाषी'** बता कर पीटने लगे। मुनि ने बीच-बचाव करते हुए बच्चे से पूछा – तुम झूठ कैसे बोलते हो? बच्चे ने कहा – जैसा पसन्द आता है, वैसा ही बोलता हूँ। मुनि ने पुनः पूछा – अच्छा तो इस पुष्करिणी के विषय में कुछ बोलो! बच्चे ने कहा इस पुष्करिणी के जल में एक विशाल मछली है! आओ भाइयो! देखो, देखो! वह कैसा खेल रही है!

मुनि के सिखाने-पढ़ाने से अगले दिन सवेरे बच्चा चिल्ला-चिल्ला कर वही बात गाँव वालों से कहने लगा और देखते ही देखते महामत्स्य को खोजने का प्रयास करने वाले ग्रामीणों ने तालाब का सारा कीचड़ बाहर फेंक कर उसे निर्मल बना दिया।

तालाब के कीचड़ से किसानों के खेत अत्यन्त उपजाऊ बन गये। कीचड़ निकालने से तालाब गहरा भी हो गया और वर्षा आते ही निर्मल जल से लबालब भर उठा। तटवर्ती झुरमुटों के कटने तथा नया तटबन्ध बनाने से तालाब की शोभा भी बढ़ गई। तालाब की वह शोभा देख गाँव के बड़े-बूढ़ों ने नियम बना दिया कि अब आगे से जो कोई भी जल को दूषित करेगा वह दण्डित होगा।

मुनि ने गाँव वालों को समझाया कि जिस बच्चे को आप लोग मिथ्याभाषी कहते थे वह सच्चे अर्थों में सत्यवादी सिद्ध हुआ। क्योंकि

उसके मिथ्याभाषण में भी लोककल्याण का बीज विद्यमान था और सत्य मात्र उसे ही नहीं कहते जो यथार्थरूप में बोला जाता है, बल्कि जो (आपाततः असत्य प्रतीत होता हो परन्तु) लोककल्याणकारी हो उसे भी सत्य ही कहते हैं।

'स मे प्रियः' शीर्षक पाठ व्यास विरचित महाभारत के भीष्म पर्व के प्रसिद्ध भगवद्गीता के द्वादश अध्याय **'भक्तियोग'** से उद्धृत है। इस अध्याय में अर्जुन का प्रश्न है कि कौन बड़ा योगी एवं भगवान् का प्रिय है, जो सगुण ईश्वर की उपासना करता है या जो अव्यक्त एवं निर्गुण की। उत्तर में श्रीकृष्ण कहते हैं– जो मुझ में मन समर्पित कर अत्यन्त श्रद्धा से मेरी उपासना करते हैं, वे ही मुझे अधिक प्रिय हैं। अर्थात् ज्ञानी से त्यागी भक्त बड़ा योगी है। साथ ही वही भक्त भगवान् को प्रिय होता है, जो सभी प्राणियों से द्वेषरहित, मित्रतापूर्ण, करुणायुक्त, निरहंकार भावपूर्वक, दुःख एवं सुख में समभाव एवं क्षमाशील व्यवहार करता हो तथा सामाजिक एवं वैयक्तिक सन्तुलन रखते हुए ईश्वर में समर्पण का भाव रखता हो, वही भगवान् के लिए प्रिय होता है।

'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि' नामक पाठ पाणिनीय शिक्षा से संगृहीत है। शिक्षा नामक वेदाङ्ग का मुख्य विषय वर्णों का परिचय कराना है। इस पाठ में संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में कितने वर्ण, वर्ण का विभाजन, उच्चारण स्थान, प्रयत्न, उच्चारण प्रक्रिया, पाठकों के गुण आदि विषयों के साथ वेद के सभी अङ्गों का भी परिचय प्रस्तुत है। इस पाठ से संस्कृत के शुद्ध उच्चारण का ज्ञान होता है जो छात्रों को संस्कृत भाषा में रुचि लेने में और दक्षता पाने में सहायक सिद्ध होगा।

भास्वती (प्रथम भाग) नामक प्रस्तुत पाठ्यग्रन्थ का निर्माण कक्षा ग्यारह (केन्द्रिक) के छात्रों को दृष्टि में रख कर किया गया है। स्वभावतः इस पाठ्यग्रन्थ को कक्षा ग्यारह (ऐच्छिक) के पाठ्यग्रन्थ की तुलना में सरल, रुचिकर, संक्षिप्त एवं आकर्षक होना चाहिए क्योंकि यह पाठ्यग्रन्थ विशेष रूप से उन छात्रों के लिए है जो संस्कृत को **विषय** के रूप में न पढ़ कर **भाषा** के रूप में पढ़ते हैं। अतः इस अन्तर को ही दृष्टि में रखते हुए प्रस्तुत पाठ्यग्रन्थ को भाषा–सौन्दर्य, भाषाप्रवाह,

भाषाविकास एवं भाषा-सारल्य की दृष्टि से सुसज्जित करने का यावच्छक्य प्रयत्न विद्वानों द्वारा किया गया है।

वैदिक मङ्गल पद्यों के अनन्तर रामायण-महाभारत से, इसी दृष्टि से छात्रों को परिचित कराया गया है ताकि वे परवर्ती समूचे संस्कृत-वाङ्मय के निष्यंदभूत आर्षकाव्यद्वय का महत्त्व जान सकें। शेष पाठों को भी इसी दृष्टि से चयनित किया गया है ताकि छात्र भाषागत एवं शैलीगत भेदों से परिचित हो सकें । चाणक्य, चरक, कालिदास तथा बाणभट्ट संस्कृत भाषा के चार मानक हैं। एक नीतिकाव्य है तो दूसरा वैद्यक का ग्रन्थ। एक संवादबहुल नाट्यग्रन्थ है तो दूसरा ललित गद्य का। इस प्रकार चारों प्रकार के ग्रन्थ संस्कृत भाषा के चार भिन्न रूप प्रस्तुत करते हैं जिसमें कालगत, विषयगत तथा शैलीगत भेद है। निश्चय ही इन पाठों के अध्ययन से छात्र संस्कृत की विविध भाषिक संरचना एवं समृद्धि से परिचित हो सकेंगे।

पाठ्यग्रन्थ के सप्तम से लेकर दशक पाठ में में संस्कृत भाषा का अर्वाचीन स्वरूप उपन्यस्त किया गया है। वस्तुतः यह संस्कृत बीसवीं-इक्कीसवीं शती ई. की है। इसमें पदे-पदे नूतन शब्दावली अथवा स्वनिर्मित (Self coined) शब्दावली का भी प्रयोग किया गया है। सुब्बण्ण शीर्षक पाठ में ही वायलिन (वाद्य-विशेष), चिटिका (टिकट), पत्रक (Note), प्रणिधि-सन्देश (Draft) जैसे नये शब्दों का प्रयोग रचनाकार ने किया है।

पुस्तक के आरंभ में दी गई भूमिका द्वारा छात्रों को संस्कृत-साहित्य की विभिन्न विधाओं के विकास के संक्षिप्त इतिहास का परिचय करवाया गया है। इसके साथ-साथ निर्धारित पाठों के मूलग्रन्थ एवं उनसे सम्बन्धित साहित्यकारों का परिचयात्मक ज्ञान भी इसमें समाविष्ट है। पाठ के आरंभ में पाठ-सन्दर्भ दिया गया है जिसमें संकलित अंश का प्रसंग सरलता से छात्रों को बोधगम्य हो सके। कक्षा में छात्रों को सीखने के अधिक अवसर प्रदान करने के लिए पाठों के अंत में विविध अभ्यास-प्रश्न भी दिये गये हैं।

प्रस्तुत संकलन की पाण्डुलिपि को तैयार करने के लिए समय-समय

पर आयोजित कार्यगोष्ठियों में भाग लेने वाले जिन विषय–विशेषज्ञों एवं संस्कृत अध्यापकों का मार्गदर्शन तथा सहयोग सुलभ हुआ है सम्पादक उन सभी विद्वानों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता है। यद्यपि इस संकलन को यथासंभव छात्रोपयोगी एवं स्तर के अनुरूप बनाने का प्रयास किया गया है तथापि इसे छात्रों के लिए और अधिक उपयोगी बनाने के लिए अनुभवी संस्कृत अध्यापकों के बहुमूल्य सुझावों का हम सदैव स्वागत करेंगे।

शिक्षकों से निवेदन

पाठ्यसामग्री जहाँ पुस्तक को लोकप्रिय बनाती है, वहीं दूसरी ओर शिक्षक की भूमिका का भी अपना महत्त्वपूर्ण योगदान है। पाठ्यसामग्री और शिक्षक दोनों ही वे आधार–स्तम्भ हैं जो अध्यापन कला को सुचारु रूप से विकसित करते हैं। केवल शिक्षक की योग्यता छात्रों का सही दिशा–निर्देश नहीं कर सकती अगर पाठ्यसामग्री छात्रों के स्तरानुकूल न हो। शिक्षकों से अनुरोध है कि वे पाठ्यसामग्री के अध्यापन के समय निम्नलिखित बिन्दुओं पर ध्यान दें।

1. समसामयिक विषय पर आधारित प्रथम पाठ में मन्त्रियों की नियुक्ति आदि विषयों से छात्रों को शासन व्यवस्था से परिचित करवायें। अनुष्टुप् छन्द का लक्षण बताकर छात्रों को पाठ्यक्रम में निर्धारित छन्दों का परिचय कराया जाये। आदि कवि वाल्मीकि के जीवनवृत्त का परिचय देकर रामायण की विषयवस्तु से परिचित करायें।
2. महाभारत के सांस्कृतिक–मूल्यों के विषय में छात्रों को जानकारी दें।
3. जीवनोपयोगी सूक्तियों से युक्त तृतीय पाठ में चाणक्य और नारायण पण्डित द्वारा लिखे गये पद्यों के निहित महत्त्व को छात्रों को बतायें। निवास कहाँ करना चाहिए? बन्धु कौन है? यह छात्रों को स्पष्ट करें। सत्सङ्गति का महत्व बताकर अन्य उदाहरणों के द्वारा छात्रों को भाव स्पष्ट करें। पुष्पगुच्छ के उदाहरण से मनस्वी व्यक्तियों के जीवनदर्शन को समझायें। परोपकार की भावना को श्लोकों द्वारा सुदृढ़ करायें। आलस्य को छोड़ने का संदेश देकर जीवलोक के छः

सुखों से परिचित करायें।

योग्यता विस्तार में दिये गये श्लोकों का अर्थ समझाकर पाठ में प्रदत्त श्लोकों का भाव साम्य स्पष्ट करें।

4. ऋतुचर्या पाठ में छात्रों को ऋतुओं का ज्ञान देते हुए शिक्षक छात्रों को अवगत करवायें कि प्रत्येक ऋतु में हमारे द्वारा क्या भक्ष्य और क्या अभक्ष्य है तथा उसकी उपयोगिता से छात्रों को परिचित कराएँ। प्रकृतिप्रदत्त इन वस्तुओं के प्रयोग के प्रति ध्यान दें।
5. कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक से संकलित इस पाठ का छात्रों से अभिनय करायें।
6. प्राचीन भारत के तपोवन की संस्कृति से छात्रों को परिचित करायें। वन्य जीवन तथा पर्यावरण का नाश करने वाली आखेट वृत्ति के प्रतिरोध में तपोवन किस प्रकार करुणा व संवेदना के द्वारा पर्यावरण की सहज भाव से रक्षा करते रहे हैं–इस तथ्य को रेखांकित करें।
7. गाँधीवादी जीवन दर्शन से छात्रों का परिचय करायें। गाँधी की आत्मकथा पढ़ने को उन्हें प्रेरित करें।
8. दक्षिण के कवि द्वारा अनूदित इस पाठ में सङ्गीत के महत्त्व को प्रतिपादित किया गया है। छात्रों की अभिरुचि जिस विषयविशेष में हो उनको उसी ओर ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रेरणा दें।
   अभिभावकों को भी बच्चों के रुचि–विशेष की ओर ध्यान–आकर्षित कराने का प्रयास करें। इच्छित विषय में अध्ययन से छात्र जीवन में उच्च स्थान प्राप्त करेंगे।
9. पं. मथुरा प्रसाद दीक्षित आधुनिक युग के प्रसिद्ध कवि एवं नाटककार हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिचय छात्रों को दें।
   वस्त्रविक्रयः नाटक के माध्यम से अंग्रेजों की दमननीति से छात्रों को अवगत करायें। प्रस्तुत नाटक के अभिनय का अभ्यास कक्षा में करायें।
10. प्राचीनकाल से चली आ रही दादा–दादी, नाना–नानी के मुख से सुनायी जाने वाली कथा–परिपाटी से छात्रों को परिचित करायें। जीवन में सत्य का महत्त्व बताकर पाठ का शीर्षक स्पष्ट करें।

योग्यता विस्तार में दी गयी सूक्तियों द्वारा भावों को सुस्पष्ट करें।

11. छात्रों को भगवद्गीता में वर्णित कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान करा कर ज्ञानमार्ग, कर्ममार्ग तथा भक्तिमार्ग के विषय में सामान्य परिचय कराएँ तथा इस पाठ का मुख्य आशय यही है कि ''वही भक्त ईश्वर का प्रिय है जो अपने सन्तुलित व्यवहार से समाज का प्रिय होता है'', इस बात को स्पष्ट करें।
12. 'पाणिनीय शिक्षा' का ज्ञान केवल संस्कृत भाषा के लिए ही नहीं अपितु भारत की अधिकांश भाषाओं के ज्ञान के लिए उपयोगी है। इस पाठ में स्थित कारिकाओं का केवल अर्थ बता देना यथेष्ट नहीं है, अपितु इनका प्रयोग संस्कृत एवं अन्य भाषा के उपयोग के साथ कराना आवश्यक है।

विषयानुक्रमणिका

		पृष्ठाङ्काः
पुरोवाक्		*v*
भूमिका		*ix*
	मङ्गलम्	1
प्रथमः पाठः	कुशलप्रशासनम्	3
द्वितीयः पाठः	सौवर्णो नकुलः	9
तृतीयः पाठः	सूक्तिसुधा	15
चतुर्थः पाठः	ऋतुचर्या	20
पञ्चमः पाठः	वीरः सर्वदमनः	26
षष्ठः पाठः	शुकशावकोदन्तः	32
सप्तमः पाठः	भव्यः सत्याग्रहाश्रमः	39
अष्टमः पाठः	सङ्गीतानुरागी सुब्बण्णः	45
नवमः पाठः	वस्त्रविक्रयः	51
दशमः पाठः	यद्भूतहितं तत्सत्यम्	57
एकादशः पाठः	स मे प्रियः	64
द्वादशः पाठः	अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि	70
	परिशिष्ट	77

भारत का संविधान

भाग 4क

नागरिकों के मूल कर्तव्य

अनुच्छेद 51 क

मूल कर्तव्य – भारत के प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह –

(क) संविधान का पालन करे और उसके आदर्शों, संस्थाओं, राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान का आदर करे;

(ख) स्वतंत्रता के लिए हमारे राष्ट्रीय आंदोलन को प्रेरित करने वाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करे;

(ग) भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण बनाए रखे;

(घ) देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे;

(ङ) भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा और प्रदेश या वर्ग पर आधारित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो महिलाओं के सम्मान के विरुद्ध हों;

(च) हमारी सामासिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्त्व समझे और उसका परिरक्षण करे;

(छ) प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव हैं, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणिमात्र के प्रति दयाभाव रखे;

(ज) वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे;

(झ) सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे;

(ञ) व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत प्रयास करे, जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए प्रयत्न और उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू सके; और

(ट) यदि माता-पिता या संरक्षक है, छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने, यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य को शिक्षा के अवसर प्रदान करे।

प्रथमः पाठः

कुशलप्रशासनम्

प्रस्तुत अंश वाल्मीकिरामायण के अयोध्याकाण्ड के सौवें सर्ग से संकलित है। भगवान् श्रीराम चित्रकूट में वनवास कर रहे हैं। भ्रातृविरह से पीड़ित भरत श्रीराम से मिलने आए हैं। श्रीराम भरत से मिलने के बाद उनसे कुशल–प्रश्न करते हैं। इस प्रकरण में भरत राम से राज्यव्यवस्था संचालन संबंधी ऐसे अनेक प्रश्न करते हैं जिनसे राजनीति विज्ञान पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

श्रीराम ने भरत से प्रश्न किया है कि क्या उन्होंने मन्त्रियों की नियुक्ति शास्त्रोक्त अपेक्षाओं के अनुरूप की है? क्या वे मन्त्रणा शास्त्रविधि से करते हैं? क्या उनका वेतन भुगतान समय से किया जाता है? यह पाठ्यांश प्रशासनिक व्यवस्था की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है। इन्हीं बिंदुओं पर प्रस्तुत पाठ्यांश में विशद विवेचन किया गया है।

जटिलं चीरवसनं प्राञ्जलिं पतितं भुवि।
ददर्श रामो दुर्दर्शं युगान्ते भास्करं यथा।।1।।

कथञ्चिदभिविज्ञाय विवर्णवदनं कृशम्।
भ्रातरं भरतं रामः परिजग्राह पाणिना।।2।।

आघ्राय रामस्तं मूर्ध्नि परिष्वज्य च राघवम्।
अङ्के भरतमारोप्य पर्यपृच्छत सादरम्।।3।।

कच्चिदात्मसमाः शूराः श्रुतवन्तो जितेन्द्रियाः।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च कृतास्ते तात मन्त्रिणः।।4।।

मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव!।
सुसंवृतो मन्त्रिधुरैरमात्यैः शास्त्रकोविदैः।।5।।

कच्चिन्निद्रावशं नैषि कच्चित्कालेऽवबुध्यसे।
कच्चिच्चापररात्रेषु चिन्तयस्यर्थनैपुणम्॥6॥

कच्चिन्मन्त्रयसे नैकः कच्चिन्न बहुभिः सह।
कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति॥7॥

कच्चिदर्थं विनिश्चित्य लघुमूलं महोदयम्।
क्षिप्रमारभसे कर्म न दीर्घयसि राघव!॥8॥

कच्चित्सहस्रान्मूर्खाणामेकमिच्छसि पण्डितम्।
पण्डितो ह्यर्थकृच्छ्रेषु कुर्यान्निःश्रेयसं महत्॥9॥

एकोऽप्यमात्यो मेधावी शूरो दक्षो विचक्षणः।
राजानं राजपुत्रं वा प्रापयेन्महतीं श्रियम्॥10॥

कच्चिन्मुख्या महत्स्वेव मध्यमेषु च मध्यमाः।
जघन्याश्च जघन्येषु भृत्यास्ते तात योजिताः॥11॥

अमात्यानुपधातीतान्पितृपैतामहाञ्छुचीन्।
श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित्त्वं नियोजयसि कर्मसु॥12॥

कच्चिद्धृष्टश्च शूरश्च धृतिमान्मतिमाञ्छुचिः।
कुलीनश्चानुरक्तश्च दक्षः सेनापतिः कृतः॥13॥

कच्चिद्बलस्य भक्तं च वेतनं च यथोचितम्।
सम्प्राप्तकालं दातव्यं ददासि न विलम्बसे॥14॥

कालातिक्रमणाच्चैव भक्तवेतनयोर्भृताः।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति सोऽनर्थः सुमहान्स्मृतः॥15॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

जटिलम् – जटाः सन्ति यस्य सः तम्, जटा + इलच्, जटा धारण किये हुए।
चीरवसनम् – चीरं वसनं यस्य सः तम्, पेड़ के छाल के बने वस्त्र पहने हुए।
प्राञ्जलिम् – नमस्कार करने वाले।
ददर्श – दृश् + लिट् लकार, प्र० पु० ए० व०, देखा।

दुर्दर्शम् – द्रष्टुम् अशक्यम्, दु:खपूर्वक देखा जाने योग्य।

अभिविज्ञाय – अभि + वि उपसर्ग ज्ञा धातु + क्त्वा > ल्यप्, पहचानकर।

विवर्णवदनम् – विवर्णं वदनं यस्य सः तम्, फीकेमुख वाला।

परिजग्राह – परि + ग्रह् + लिट्, प्र० पु० ए० व०, ग्रहण किया।

परिष्वज्य – परि + ष्वस्ज् + क्त्वा > ल्यप्, आलिङ्गन करके।

आघ्राय – आ + घ्रा + क्त्वा > ल्यप्, सूँघकर।

आरोप्य – आ + रुह् + णिच् + क्त्वा > ल्यप्, बैठाकर।

पर्यपृच्छत – परि + पृच्छ् + लङ् (आत्मनेपद, आर्षप्रयोग), पूछा।

आत्मसमाः – आत्मना समाः, अपने समान।

श्रुतवन्तः – श्रुत + मतुप् पुं० प्र० पु० ब० व०, शास्त्र पढ़े हुए।

जितेन्द्रियाः – जितानि इन्द्रियाणि यैः ते, इन्द्रियों को वश में करने वाले।

मन्त्रः – मन्त्रणा।

विजयमूलम् – विजयः मूले यस्य तत्, विजय प्रदान करने वाला।

शास्त्रकोविदैः – शास्त्रस्य कोविदैः, षष्ठी-तत्पुरुष, शास्त्र के ज्ञाताओं के द्वारा।

अवबुध्यसे – जागते हो।

मन्त्रयसे – मन्त्रणा करते हो।

विनिश्चित्य – वि + निस् + चि + क्त्वा > ल्यप्, निश्चय करके।

दीर्घयसि – विलम्ब करते हो।

अर्थकृच्छ्रेषु – अर्थस्य कृच्छ्रेषु, षष्ठी-तत्पुरुष, धन की कठिनाइयों में।

निःश्रेयसम् – निःशेषेण श्रेयांसि यस्मिन् तत्, कल्याण।

अमात्यः – मन्त्री।

विचक्षणः – निपुण।

प्रापयेत् – प्र + आप् + णिच्, विधिलिङ्, प्र० पु० ए० व०, प्राप्त कराए।

जघन्यः – निंदनीय।

एषि – प्राप्त होते हो।

नियोजयसि – नियुक्त करते हो।

दक्षः – चतुर, निपुण।

भक्तवेतनयोः – भोजन और वेतन के।

उपधातीतान् – उपधायाः अतीतान्, राजाओं के द्वारा किये गये मंत्रियों के परीक्षण से शुद्ध होकर निकले हुए।

धृष्टः – किसी के दबाव में न आने वाला।

सन्धिविच्छेदः

रामो दुर्दर्शम्	=	रामः + दुर्दर्शम्।
युगान्ते	=	युग + अन्ते।
कथञ्चिदभिविज्ञाय	=	कथम् + चित् + अभिविज्ञाय।
रामस्तम्	=	रामः + तम्।
पर्यपृच्छत	=	परि + अपृच्छत (आर्षप्रयोग)।
कश्चिदात्मसमाः	=	कः + चित् + आत्मसमाः।
कुलीनाश्चेङ्गितज्ञाश्च	=	कुलीनाः + च + इङ्गितज्ञाः + च
मन्त्रिधुरैरमात्यैः	=	मन्त्रिधुरैः + अमात्यैः।
कच्चिन्निद्रावशम्	=	कत् + चित् + निद्रावशम्।
नैषि	=	न + एषि।
नैकः	=	न + एकः।
ह्यर्थकृच्छ्रेषु	=	हि + अर्थकृच्छ्रेषु।
कुर्यान्निःश्रेयसम्	=	कुर्यात् + निःश्रेयसम्।
कच्चिद्धृष्टश्च	=	कच्चित् + धृष्टः + च।
मतिमाञ्छुचिः	=	मतिमान् + शुचिः।
कुलीनाश्च	=	कुलीनाः + च।
भृत्याश्च	=	भृत्याः + च।
कालातिक्रमणाच्चैव	=	काल + अतिक्रमणात् + च + एव।
भर्तुरप्यतिकुप्यन्ति	=	भर्तुः + अपि + अतिकुप्यन्ति
सोऽनर्थः	=	सः + अनर्थः

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरं देयम्**
   (क) अयम् पाठः कस्माद् ग्रन्थात् सङ्कलितः?
   (ख) जटिलः चीरवसनः भुवि पतितः कः आसीत्?
   (ग) रामः कम् पाणिना परिजग्राह?
   (घ) भरतम् कः अपृच्छत्?
   (ङ) राज्ञां विजयमूलं किं भवति?
   (च) राज्ञः कृते कीदृशः अमात्यः क्षेमकरः भवेत्?
   (छ) सेनापतिः कीदृग् गुणयुक्तः भवेत्?

(ज) बलेभ्यः यथाकालम् किं दातव्यम्?
(झ) मन्त्रः कीदृशः भवति?
(ञ) मेधावी अमात्यः राजानं काम् प्रापयेत्?

2. रिक्तस्थानपूर्तिः क्रियताम्

(क) रामः ददर्श दुर्दर्शं युगान्ते .... यथा।
(ख) अङ्के .... आरोप्य रामः सादरं पर्यपृच्छत।
(ग) कच्चित् काले .... ?
(घ) पण्डितः हि अर्थकृच्छ्रेषु .... कुर्यात्।
(ङ) श्रेष्ठाञ्छ्रेष्ठेषु कच्चित् एवं .... नियोजयसि।

3. सप्रसङ्गं मातृभाषया व्याख्यायेताम्

(क) मन्त्रो विजयमूलं हि राज्ञां भवति राघव!
(ख) कच्चित्ते मन्त्रितो मन्त्रो राष्ट्रं न परिधावति!

4. प्रथमनवमश्लोकयोः स्वमातृभाषया अनुवादः क्रियताम्

5. अधोलिखितपदानां उचितमर्थं कोष्ठकात् चित्वा लिखत

(क) दुर्दर्शम्	=	....
(ख) परिष्वज्य	=	....
(ग) आघ्राय	=	....
(घ) मूर्ध्नि	=	....
(ङ) निःश्रेयसम्	=	....
(च) विचक्षणः	=	....
(छ) बलस्य	=	....

(आलिंगन करके), (सूँघकर), (कठिनाई से देखने योग्य), (निपुण), (सेना का), (शिर में), (कल्याण को)

6. विपरीतार्थमेलनं क्रियताम्

एकः	शनैः
क्षिप्रम्	मूर्खः
पण्डितः	लघु
महत्	बहु

7. सन्धिविच्छेदः क्रियताम्

यथा– कुलीनश्च	=	कुलीनः + च
भृत्याश्च	=	....

धृष्टश्च	=	....
अनुरक्तश्च	=	....
शूरश्च	=	....

8. अधोलिखितेषु शब्देषु प्रकृतिं प्रत्ययं च पृथक् कुरुत

पतितम्, आघ्राय, मन्त्रिणः, पण्डिताः, मेधावी, दातव्यम्, स्मृतः।

योग्यताविस्तारः

(क) रामायण-परिचयः

महर्षिवाल्मीकिविरचिते रामायणाख्ये महाकाव्ये अयोध्यानृपतेः दशरथस्य पुत्रस्य रामस्य चरित्रं विस्तरेण वर्णितम्। महाकाव्यमिदं सप्तकाण्डेषु विभक्तम्। यथा – बालकाण्डम्, अयोध्याकाण्डम्, अरण्यकाण्डम्, किष्किन्धाकाण्डम्, सुन्दरकाण्डम्, युद्धकाण्डम् उत्तरकाण्डञ्चेति।

(ख) भावविस्तारः

राजा

कार्यं सोऽवेक्ष्य शक्तिं च देशकालौ च तत्त्वतः।
कुरुते धर्मसिद्ध्यर्थं विश्वरूपं पुनः पुनः।।
यस्य प्रसादे पद्मा श्रीविजयश्च पराक्रमे।
मृत्युश्च वसति क्रोधे सर्वतेजोमयो हि सः।। (*मनुस्मृतिः 7/10, 11*)

मन्त्री

मौलाञ्छास्त्रविदः शूरांल्लब्धलक्षान्कुलोद्भवान्।
सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्।। (*मनुस्मृतिः 7/54*)

अमात्यः

अमात्यमुख्यं धर्मज्ञं प्राज्ञं दान्तं कुलोद्गतम्।
स्थापयेदासने तस्मिन्खिन्नः कार्ये क्षणे नृणाम्।। (*मनुस्मृतिः 7/141*)

वेतनम्

कति दत्तं हि भृत्येभ्यो वेतने पारितोषिकम्।
तत्प्राप्तिपत्रं गृह्णीयात् दद्याद्वेतनपत्रकम्।।
सैनिकाः शिक्षिता ये ये तेषु पूर्णा भृतिः स्मृताः।
व्यूहाभ्यासे नियुक्ता ये तेष्वर्धाम्भृतिमावहेत्।। (*शुक्रनीतिः*)

द्वितीयः पाठः

सौवर्णो नकुलः

प्रस्तुत पाठ महर्षि व्यास विरचित महाभारत के आश्वमेधिक पर्व (अध्याय 91-93) से सङ्कलित है। महाभारत के युद्ध के अनन्तर महाराज युधिष्ठिर अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करते हैं। यज्ञ के सम्पन्न होने पर एक नकुल (नेवला) यज्ञभूमि में आता है, जिसका आधा शरीर सोने का है। वह यज्ञभूमि में उपस्थित याज्ञिकों से कहता है कि यह अश्वमेध यज्ञ भी उस ब्राह्मण के सक्तुप्रस्थ यज्ञ के तुल्य नहीं है, जिसमें मेरा आधा शरीर स्वर्णमय हो गया था। उस नकुल की ऐसी आश्चर्यजनक वार्ता को सुनकर याज्ञिकों द्वारा सक्तुप्रस्थ यज्ञ के विषय में जिज्ञासा करने पर नकुल याज्ञिकों के समक्ष प्रस्तुत कथा को सुनाता है।

श्रूयतां राजशार्दूल महदाश्चर्यमुत्तमम्।
अश्वमेधे महायज्ञे निवृत्ते यदभूद्विभो!॥1॥

बिलान्निष्क्रम्य नकुलो रुक्मपार्श्वस्तदानघ!।
मानुषं वचनं प्राह धृष्टो बिलशयो महान्।।2।।

सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः!।
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः।।3।।

धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे धर्मज्ञैर्बहुभिर्वृते।
उञ्छवृत्तिर्द्विजः कश्चित्कापोतिरभवत्पुरा।।4।।

सभार्यः सह पुत्रेण सस्नुषस्तपसि स्थितः।
वधूचतुर्थो वृद्धः स धर्मात्मा नियतेन्द्रियः।।5।।

षष्ठे काले कदाचिच्च तस्याहारो न विद्यते।।
भुङ्क्तेऽन्यस्मिन्कदाचित्स षष्ठे काले द्विजोत्तमः।।6।।

कपोतधर्मिणस्तस्य दुर्भिक्षे सति दारुणे।
क्षीणौषधिसमवायो द्रव्यहीनोऽभवत्तदा।।7।।

अथ षष्ठे गते काले यवप्रस्थमुपार्जयत्।
यवप्रस्थं च ते सक्तूनकुर्वन्त तपस्विनः।।8।।

कृतजप्याह्निकास्ते तु हुत्वा वह्निं यथाविधि।
कुडवं कुडवं सर्वे व्यभजन्त तपस्विनः।।9।।

अथागच्छद्द्विजः कश्चिदतिथिर्भुञ्जतां तदा।
ते तं दृष्ट्वातिथिं तत्र प्रहृष्टमनसोऽभवन्।।10।।

कुटीं प्रवेशयामासुः क्षुधार्तमतिथिं तदा।
इदमर्घ्यं च पाद्यं च बृसी चेयं तवानघ।

शुचयः सक्तवश्चेमे नियमोपार्जिताः प्रभो!।
प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते मया दत्ता द्विजोत्तम!।।11।।

इत्युक्त्वा तानुपादाय सक्तून्प्रादाद्द्विजातये।
ततस्तुष्टोऽभवद्विप्रस्तस्य साधोर्महात्मनः।।12।।

प्रीतात्मा स तु तं वाक्यमिदमाह द्विजर्षभम्।
वाग्मी तदा द्विजश्रेष्ठो धर्मः पुरुषविग्रहः॥13॥

शुद्धेन तव दानेन न्यायोपात्तेन यत्नतः।
यथाशक्ति विमुक्तेन प्रीतोऽस्मि द्विजसत्तम!॥14॥

ब्रह्मचर्येण यज्ञेन दानेन तपसा तथा।
अगह्वरेण धर्मेण तस्माद्गच्छ दिवं द्विज॥15॥

तस्मिन्विप्रे गते स्वर्गं ससुते सस्नुषे तदा।
भार्याचतुर्थे धर्मज्ञे ततोऽहं निःसृतो बिलात्॥16॥

ततस्तु सक्तुगन्धेन क्लेदेन सलिलस्य च।
दिव्यपुष्पावमर्दाच्च साधोर्दानलवैश्च तैः।
विप्रस्य तपसा तस्य शिरो मे काञ्चनीकृतम्॥17॥

ततो मयोक्तं तद्वाक्यं प्रहस्य द्विजसत्तमाः!।
सक्तुप्रस्थेन यज्ञोऽयं सम्मितो नेति सर्वथा॥18॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

राजशार्दूल! – हे नृपश्रेष्ठ!
अश्वमेधे – अश्वमेध यज्ञ में।
निवृत्ते – सम्पन्न होने पर।
रुक्मपार्श्वः – सुवर्णमय बगल वाला/पार्श्वभाग वाला।
अनघ! – हे पापरहित!
बिलशयः – बिले शेते यः सः, बिल में रहने वाला।
उञ्छवृत्तेः – उञ्छेन वृत्तिर्यस्य सः, तस्य। किसान द्वारा अपने खेतों से अन्न संगृहीत कर लेने पर वहाँ से छूटे हुए अनाज के दानों को चुन कर लाना और उन्हीं से आजीविका करना उञ्छवृत्ति कहलाती है, इसी वृत्ति से आजीविका करने वाले के।
वदान्यस्य – दानी के।

कापोतिः	–	कपोतवृत्ति वाला, जिस प्रकार कबूतर इधर-उधर से जो कुछ मिल जाये उससे जीवनयापन करता है, वैसी वृत्तिवाला।
सस्नुषः	–	पुत्रवधू सहित।
दुर्भिक्षे सति	–	अकाल पड़ने पर।
दारुणे	–	भयानक में।
यवप्रस्थम्	–	एक प्रस्थ जौ (सेर भर)।
सक्तून्	–	सत्तुओं को।
कृतजप्याह्निकाः	–	कृतं जप्यम् आह्निकं च यैस्ते, वे जिन्होंने जप एवम् नित्यकर्म कर लिया हो।
हुत्वा	–	हवन करके।
यथाविधि	–	विधिम् अनतिक्रम्य, विधिपूर्वक।
कुडवम्	–	प्रस्थ का चतुर्थ भाग (पाव भर)।
प्रहृष्टमनसः	–	प्रहृष्टं मनो येषां ते, प्रसन्न मन वाले।
कुटीम्	–	कुटिया (के अन्दर)।
क्षुधार्तम्	–	भूख से पीड़ित।
अर्घ्यम्	–	पूजनार्थ जल।
पाद्यम्	–	पूजन के समय पादप्रक्षालनार्थ जल।
बृसी	–	आसन।
नियमोपार्जिताः	–	नियमपूर्वक प्राप्त।
प्रीतात्मा	–	प्रसन्नचित्त वाला।
द्विजर्षभम्	–	द्विजः ऋषभः इव तम्, श्रेष्ठ ब्राह्मण को।
वाग्मी	–	श्रेष्ठ वक्ता।
पुरुषविग्रहः	–	पुरुषस्य विग्रह इव विग्रहो यस्य सः पुरुष शरीर वाला।
न्यायोपात्तेन	–	न्यायेन उपात्तं तेन, धर्मपूर्वक प्राप्त से।
यथाशक्ति	–	शक्तिम् अनतिक्रम्य, सामर्थ्यानुसार।
अगह्वरेण	–	उत्तम।
दिवम्	–	स्वर्ग (को)।
निःसृतः	–	निकला।
सक्तुगन्धेन	–	सत्तुओं की गन्ध से।
दानलवैः	–	दान दिये हुए (सत्तुओं के कणों से)।
प्रहस्य	–	हँस कर।
सम्मितः	–	तुल्य।

अभ्यासः

1. **अधोलिखितानां प्रश्नानामुत्तराणि संस्कृतभाषया देयानि**

(क) नकुलः कीदृशः आसीत्?

(ख) बिलान्निष्क्रम्य नकुलः किं कथयति?

(ग) उञ्छवृत्तिर्द्विजः कुत्र न्यवसत्?

(घ) कपोतधर्मी द्विजः द्रव्यहीनः कथम् अभवत्?

(ङ) यदा तस्य द्विजस्य परिवारः सक्तून् भोक्तुं प्रवृत्तः अभवत् तदा तत्र कः आगतः?

(च) द्विजः सक्तून् कस्मै प्रादात्?

2. **अधोऽङ्कितेषु सन्धिविच्छेदं दर्शयत**

महदाश्चर्यम्, बिलान्निष्क्रम्य, उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य, भुङ्क्तेऽन्यस्मिन्, दानलवैश्च, क्षीणौषधिसमवायः।

3. **अधो न्यस्तेषु सन्धिं कुरुत**

तस्य + आहारः, यत् + अभूत् + विभो, उञ्छवृत्तिः + द्विजः, नियत + इन्द्रियः, ततः + अहम्, न्याय + उपात्तेन।

4. **अधोऽङ्कितयोः श्लोकयोः स्वमातृभाषया अनुवादः कार्यः**

(क) सक्तुप्रस्थेन वो नायं यज्ञस्तुल्यो नराधिपाः।
उञ्छवृत्तेर्वदान्यस्य कुरुक्षेत्रनिवासिनः।

(ख) दिव्यपुष्पावमर्दाच्च साधोर्दानलवैश्च तैः।
विप्रस्य तपसा तस्य शिरो मे काञ्चनीकृतम्।

5. **'सौवर्णो नकुलः' इत्यस्य पाठस्य सारांशः मातृभाषया लेखनीयः**

6. **रिक्तस्थानानि पूरयत**

(क) राजशार्दूल! .... श्रूयताम्।

(ख) अयं वः यज्ञः .... तुल्यः नास्ति।

(ग) पुरा उञ्छवृत्तिर्द्विजः .... अभवत्।

(घ) तदा क्षुधार्तम् .... कुटीं प्रवेशयामासुः।

(ङ) तस्य विप्रस्य तपसा मे .... काञ्चनीकृतम्।

(च) सक्तुप्रस्थेनायं .... सम्मितो नास्ति।

योग्यताविस्तारः

(क) महाभारतम् :– महर्षिव्यासप्रणीते महाभारतनामके महाकाव्ये लक्षाधिकाः श्लोकाः सन्ति। अस्मिन् महाकाव्ये अष्टादशपर्वाणि सन्ति – आदिपर्व, सभापर्व, वनपर्व, विराट्पर्व, उद्योगपर्व, भीष्मपर्व, द्रोणपर्व, कर्णपर्व, शल्यपर्व, सौप्तिकपर्व, स्त्रीपर्व, शान्तिपर्व, अनुशासनपर्व, आश्वमेधिकपर्व, आश्रमवासिकपर्व, मौसलपर्व, महा-प्रस्थानपर्व स्वर्गारोहणपर्व च।

महाभारतम् वेदोत्तरकालिकाख्यानानां मतानां च विशालं भाण्डारं विद्यते। विषयस्यास्य व्यापकता अस्यान्तिमपर्वणः वचनेनानेन स्पष्टा भवति–

"यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।"

(ख) अश्वमेधयज्ञ :– अश्वमेधयज्ञः प्राचीनकाले राज्यविस्ताराय राष्ट्रसमृद्धये च करणीयः यज्ञः आसीत्। अस्मिन् राज्ञां बलस्य पराक्रमस्य च परीक्षा भवति स्म। यज्ञकर्ता नृपः स्वराष्ट्रियप्रतीकमश्वं सैन्यबलैः सह भूमण्डलभ्रमणाय प्रेषयति स्म। यो नृपः स्वराज्ये समागतमश्वं निर्बाधं गन्तुं प्रादिशत् सः यज्ञकर्त्रे राज्ञे करदेयतां स्वीकरोतिस्म। यः तमश्वमरुणत् सः आश्वमेधिकनृपस्याधीनतां नाङ्गीकरोति स्म। तदा उभयोर्बलयोर्मध्ये युद्धं भवति स्म तत्रैव च नृपाणां पराक्रमः परीक्ष्यते स्म।

शतपथब्राह्मणे अश्वपदं राष्ट्रार्थे प्रयुक्तम् – **'राष्ट्रं वै अश्वः'** इति।

तृतीयः पाठः

सूक्तिसुधा

प्रस्तुत पाठ चाणक्य द्वारा रचित चाणक्यनीति तथा नारायण पण्डित प्रणीत हितोपदेश से संकलित किया गया है। महर्षि चाणक्य द्वारा कहे गए मुक्तक पद्य जीवन को मूल्यवान बनाने के लिए परम उपयोगी हैं। पद्य संख्या एक से तीन में – किस स्थान पर निवास करना चाहिए, कौन मनुष्य का सच्चा मित्र है तथा गुणों की उपयोगिता का वर्णन है। पद्य संख्या चार से आठ हितकारी उपदेशों को सूचित करते हैं यथा मूर्ख व्यक्ति का प्रवीण होना, मनस्वी व्यक्ति का व्यवहार, पुरुष के छह दोषों का वर्णन तथा सांसारिक जीवनसुखों के वर्णन। जीवन को मधुर तथा उद्देश्यपूर्ण बनाने के लिए कतिपय मूल्यों की आवश्यकता होती है और ये नीतिपरक पद्य तथा हितकारी उपदेश जीवन को सुसंस्कृत एवं सार्थक बनाने में उपयोगी तथा सहायक सिद्ध होंगे।

यस्मिन् देशे न सम्मानो न वृत्तिर्न च बान्धवाः।
न च विद्यागमः कश्चिद् वासं तत्र न कारयेत्।।1।।

आतुरे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसंकटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।2।।

कोऽतिभारः समर्थानां किं दूरं व्यवसायिनाम्।
को विदेशः सविद्यानां कोऽप्रियः प्रियवादिनाम्।।3।।

काचः काञ्चनसंसर्गाद् धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्सन्निधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।4।।

कुसुमस्तबकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽथवा।।5।।

धनानि जीवितं चैव परार्थे प्राज्ञ उत्सृजेत्।
सन्निमित्तं वरं त्यागो विनाशे नियते सति॥6॥

षड्दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता॥7॥

अर्थागमो नित्यमरोगिता च प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्!॥8॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

विद्यागमः	–	विद्यायाः आगमः, षष्ठी तत्पुरुष समास, विद्या की प्राप्ति।
वृत्तिः	–	वृत् + क्तिन्, आजीविका।
शत्रुसंकटे	–	शत्रोः संकटः तस्मिन्, षष्ठी तत्पुरुष, शत्रु का संकट होने पर।
व्यवसायिनाम्	–	व्यवसाय + णिनि, ष० ब० व, उद्यमशीलों के लिए।
धत्ते	–	धारण करता है।
सत्सन्निधानेन	–	सतां सन्निधानम्, तेन, षष्ठी तत्पुरुष, सज्जनों की संगति से।
कुसुमस्तबकः	–	कुसुमानां स्तबकः, षष्ठी तत्पुरुष, फूलों का गुच्छा।
विशीर्येत	–	वि + शॄ + कर्मवाच्य वि० लिङ्० प्र० पु० ए० व०, नष्ट होवे।
उत्सृजेत्	–	त्याग दे।
सन्निमित्तं	–	श्रेष्ठ लक्ष्य के लिए।
दीर्घसूत्रता	–	दीर्घसूत्र + तल्, स्त्री० प्र० ए० व०, कार्य के विषय में अधिक समय तक सोचते रहना, समय पर कार्य न करना।
अर्थागमः	–	अर्थस्य आगमः, षष्ठी तत्पुरुष, धन की प्राप्ति।
अर्थकरी	–	धन उत्पन्न करने वाली।
प्रियवादिनी	–	प्रिय बोलने वाली।
अरोगिता	–	किसी प्रकार के रोग का न होना (नीरोग होना)।

अभ्यासः

1. **संस्कृतेन उत्तरं देयम्**
   (क) अयं पाठः काभ्यां ग्रन्थाभ्यां संकलितः?
   (ख) कुत्र वासः न कर्त्तव्यः?

(ग) बान्धवः कुत्र कुत्र तिष्ठति?
(घ) काचः कस्य संसर्गात् मारकतीम् द्युतिं धत्ते।
(ङ) प्राज्ञः परार्थे किं किं उत्सृजेत्?
(च) मूर्खः कथम् प्रवीणताम् याति?
(छ) परुषेण के षड् दोषाः हातव्याः?
(ज) जीवलोकस्य षट् सुखानि कानि सन्ति?

2. रिक्तस्थानपूर्तिः क्रियताम्

(क) यः .... तिष्ठति सः बान्धवः।
(ख) जीवलोकस्य .... षट् सुखानि भवन्ति।
(ग) मनस्विनः .... इव द्वयी वृत्तिः भवति।
(घ) षड्दोषाः .... हातव्याः।
(ङ) सन्निमित्तं वरं त्यागो .... सति।

3. अधोलिखितयोः पद्यांशयोः मातृभाषया भावार्थम् लिखत

(क) कोऽप्रियः प्रियवादिनाम्।
(ख) सन्निमित्तं वरं त्यागो विनाशे नियते सति।
(ग) सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेद् विशीर्येत वनेऽथवा।

4. क-भागस्थपदैः सह ख-भागस्यार्थानां मेलनं क्रियताम्

क	**ख**
विद्यागमः	विदुषाम्
व्यसने	शोभाम्
सविद्यानाम्	विद्याप्राप्तिः
द्युतिम्	पुष्पगुच्छस्य
कुसुमस्तबकस्य	विपत्तौ
मूर्ध्नि	कल्याणम्
भूतिम्	शिरसि

5. उदाहरणानुसारं विग्रहपदानि आधृत्य समस्तपदानि रचयत

	विग्रहपदानि		**समस्तपदानि**
यथा–	विद्यायाः आगमः	=	विद्यागमः
	राज्ञः द्वारे	=	....
	सतां सन्निधानेन	=	....

काञ्चनस्य संसर्गात्	=	....
अर्थस्य आगमः	=	....
जीविताय इदम्	=	....
न रोगिता	=	....
अर्थम् करोति या सा	=	....

6. अधोलिखितेषु शब्देषु प्रकृतिप्रत्यययोः विच्छेदं कुरुत

प्राप्ते, प्रवीणताम्, वृत्तिः, नियते, हातव्या।

योग्यताविस्तारः

समानान्तरश्लोकाः

(1) पापान्निवारयति योजयते हिताय
गुह्यं निगूहयति गुणान्प्रकटीकरोति।
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले
सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः।।

(*नीतिशतकम्-73*)

(2) मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णाः
त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः।
परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्य नित्यं
निजहृदि विकसन्तः सन्ति सन्तः कियन्तः।।

(*नीतिशतकम्-79*)

(3) महाजनस्य संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पद्मपत्रस्थितं वारि धत्ते मुक्ताफलश्रियम्।।

(*सुभाषितरत्नभाण्डागारम्-90/2*)

(4) संसारकटुवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे।
सुभाषितं च सुस्वादु संगतिः सुजने जने।।

(*चाणक्यनीतिदर्पणः*)

(5) संतप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तज्जायते मौक्तिकम्
प्रायेणाधममध्यमोत्तमगुणः संसर्गतो जायते।।

(*भर्तृहरिनीतिशतकम्*)

(6) सत्यं ब्रूयात्प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः।।

(*मनुस्मृतिः 4/138*)

(7) क्वचिद्भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम्।
क्वचिच्छाकाहारी क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो
मनस्वी कार्यार्थी गणयति न दुःखं न च सुखम्।।

(8) आत्मार्थं जीवलोकेऽस्मिन् को न जीवति मानवः।
परं परोपकारार्थं यो जीवति स जीवति।

(*सुभाषितरत्नभाण्डागारम्*)

(9) रविश्चन्द्रो घनाः वृक्षाः नद्यो गावश्च सज्जनाः।
एते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः।।

(10) आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुः कृत्वा यं नावसीदति।।

(*नीतिशतकम्*)

चतुर्थः पाठः

ऋतुचर्या

यह पाठ महर्षि अग्निवेश द्वारा मूल रूप में लिखित तथा महर्षि चरक द्वारा प्रति-संस्कृत **चरकसंहिता** नामक आयुर्वेद के ग्रन्थ से संकलित किया गया है। इस ग्रन्थ के छठे अध्याय में विभिन्न ऋतुओं में आहार से संबंधित नियम बताए गए हैं। अपनी दिनचर्या में किंचित् परिवर्तन करके व्यक्ति दीर्घ आयु तथा स्वस्थ जीवन को प्राप्त करता है। संकलित पद्यों में हेमन्त, शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा और शरद् इन छः ऋतुओं में मनुष्य को अपनी भोजनचर्या किस प्रकार की रखनी चाहिए, इसका विवेचन किया गया है।

हेमन्तः

गोरसानिक्षुविकृतीर्वसां तैलं नवौदनम्।
हेमन्तेऽभ्यस्यतस्तोयमुष्णं चायुर्न हीयते॥1॥

वर्जयेदन्नपानानि वातलानि लघूनि च।
प्रवातं प्रमिताहारमुदमन्थं हिमागमे॥2॥

शिशिरः

हेमन्तशिशिरौ तुल्यौ शिशिरेऽल्पं विशेषणम्।
रौक्ष्यमादानजं शीतं मेघमारुतवर्षजम्॥3॥

तस्माद्धैमन्तिकः सर्वः शिशिरे विधिरिष्यते।
निवातमुष्णं त्वधिकं शिशिरे गृहमाश्रयेत्॥4॥

कटुतिक्तकषायाणि वातलानि लघूनि च।
वर्जयेदन्नपानानि शिशिरे शीतलानि च॥5॥

वसन्तः

वसन्ते निचितः श्लेष्मा दिनकृद्भाभिरीरितः।
कायाग्निं बाधते रोगांस्ततः प्रकुरुते बहून्॥6॥

तस्माद्वसन्ते कर्माणि वमनादीनि कारयेत्।
गुर्वम्लस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत्॥7॥

ग्रीष्मः

मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः।
स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम्॥8॥

घृतं पयः सशाल्यन्नं भजन् ग्रीष्मे न सीदति।
लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं च विवर्जयेत्॥9॥

वर्षा

भूवाष्पान्मेघनिस्यन्दात् पाकादम्लाज्जलस्य च।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः॥10॥

व्यक्ताम्ललवणस्नेहं वातवर्षाकुलेऽहनि।
विशेषशीते भोक्तव्यं वर्षास्वनिलशान्तये॥11॥

शरद्

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति॥12॥

तथान्नपानं मधुरं लघु शीतं सतिक्तकम्।
पित्तप्रशमनं सेव्यं मात्रया सुप्रकाङ्क्षितैः1113॥

शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः॥14॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

गोरसान्	–	गाय का दूध, दही एवं छाछ।
नवौदनम्	–	नये चावल।
वसां	–	कोई तेल अथवा घी।
वातलानि	–	वातकारक वातं लान्ति यानि तानि उपपद तत्पुरुष।
प्रवातं	–	ताजा हवा, हवादार।
रौक्ष्यं	–	रुक्षस्य भावः, रूक्ष + ष्यञ्, रूखा।
निचितः	–	नि + चि + क्त, बढ़ा हुआ।
श्लेष्मा	–	कफ।
उदमन्थम्	–	जौ के पानी से निर्मित पदार्थ।
वमनादीनि	–	वमनम् आदिः येषां तानि (ब० स०) उल्टी आदि।
दिवास्वप्नम्	–	दिन में सोना।
मयूखैः	–	किरणों के द्वारा।
निवातम्	–	वायुरहित।
पेपीयते	–	पा + यङ्, लट्, प्र० पु० ए० व०, बार-बार अथवा अत्यधिक पीता है।
मात्रया	–	मात्रा के अनुसार।
सशाल्यन्नम्	–	शालिभिः सहितं, सशालि च तत् अन्नम्, धान सहित अन्न।
अनिलशान्तये	–	अनिलस्य शान्तये, वायु की शांति के लिए।
अर्करश्मिभिः	–	अर्कस्य रश्मिभिः, सूर्य की किरणों के द्वारा।
प्रदोषे	–	रात्रि में।
आदानजं	–	आदानात् जायते, लेने (खाने-पीने) से होने वाला।
सुप्रकाङ्क्षितैः	–	सु + प्र + कांक्ष् + क्त, तृ० ब० व०, चाहे हुए।

सन्धिविच्छेदः

नवौदनम्	=	नव + ओदनम्
चायुर्न	=	च + आयुः + न
शिशिरेऽल्पम्	=	शिशिरे + अल्पम्
विधिरिष्यते	=	विधिः + इष्यते
भाभिरीरितः	=	भाभिः + ईरितः
सशाल्यन्नम्	=	सशालि + अन्नम्
तस्माद्धैमन्तिके	=	तस्मात् + हैमन्तिके

रोगांस्ततः	=	रोगान् + ततः
वर्षास्वग्निबले	=	वर्षासु + अग्निबले
सहसैवार्करश्मिभिः	=	सहसा + एव + अर्करश्मिभिः
चेन्दुरश्मयः	=	च + इन्दुरश्मयः

अभ्यासः

1. संस्कृतेन उत्तराणि देयानि

(क) अयं पाठः कस्माद् ग्रन्थात् सङ्कलितः कश्च तस्य प्रणेता?
(ख) कति ऋतवः भवन्ति? कानि च तेषां नामानि?
(ग) शिशिरे किं किं वर्जनीयम्?
(घ) वसन्ते कायाग्निं कः बाधते?
(ङ) ग्रीष्मे कीदृशम् अन्नपानं हितं भवति?
(च) कस्मिन् ऋतौ पवनादयः कुप्यन्ति?
(छ) शरदृतौ पित्तप्रशमनाय किं किं सेव्यम् अस्ति?
(ज) हिमागमे कीदृशानि अन्नपानानि वर्जयेत्?
(झ) शिशिरे कीदृशम् गृहमाश्रयेत्?
(ञ) वसन्ते कानि कर्माणि कारयेत्?
(ट) व्यायामं कदा वर्जयेत्?
(ठ) इन्दुरश्मयः कदा प्रशस्यन्ते?

2. रिक्तस्थानपूर्तिः क्रियताम्

(क) हिमागमे .... लघूनि च अन्नपानानि वर्जयेत्।
(ख) शिशिरे निवातम् .... च गृहम् आश्रयेत्।
(ग) .... दिवास्वप्नं वर्जयेत्।
(घ) ग्रीष्मे घृतं पयः .... भजन् नरः न सीदति।
(ङ) .... विमलानि वासांसि प्रशस्यन्ते।

3. मातृभाषया व्याख्यायन्ताम्

(क) हेमन्तशिशिरौ तुल्यौ शिशिरेऽल्पं विशेषणम्।
(ख) मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः।
(ग) शरत्काले प्रशस्यन्ते प्रदोषे चेन्दुरश्मयः।

4. ऋतुचर्यापाठम् अधिकृत्य प्रत्येकम् ऋतौ किं किं करणीयम् किं किं च न करणीयम् इति मातृभाषया सुस्पष्टयत

5. अधोलिखितानि विग्रहपदानि आधृत्य समस्तपदानि रचयत

यथा – नवम् ओदनम् नवौदनम् कर्मधारय समासः

विग्रहपदानि	**समस्तपदानि**	**समास नाम**
(क) अन्नानि च पानानि च	....	द्वन्द्वः
(ख) हेमन्तः च शिशिरः च	....	द्वन्द्वः
(ग) हिमस्य आगमे	....	ष० तत्पुरुषः
(घ) कायस्य अग्निम्	....	ष० तत्पुरुषः
(ङ) अर्कस्य रश्मिभिः	....	ष० तत्पुरुषः

6. अधोलिखितपदानामर्थमेलनं क्रियताम्

पदानि	**अर्थाः**
(क) श्लेष्मा	हवारहित
(ख) रौक्ष्यम्	बढ़ा हुआ (जमा हुआ)
(ग) निवातम्	वात
(घ) निचितः	भारी
(ङ) पवनः	हल्का
(च) गुरुः	वस्त्र
(छ) लघु	रूखापन
(ज) वासांसि	कफ

7. अधोलिखितपदानाम् विपरीतार्थकपदैः सह मेलनं क्रियताम्

पदानि	**विपरीतार्थकपदानि**
उष्णम्	अधिकम्
सीदति	शीतानाम्
तप्तानाम्	प्रसीदति
गुरु	शीतम्
अल्पम्	लघु

8. प्रकृतिं प्रत्ययं च योजयित्वा पदनिर्माणं कुरुत

हेमन्त + ठक्, स्निह् + क्त, भुज् + तव्यत्, सेव् + यत्, शरद् + अण्।

योग्यताविस्तारः

(क) चरकसंहिता

चरकसंहिता आयुर्वेदशास्त्रस्य प्रसिद्धः ग्रन्थो विद्यते। ग्रन्थेऽस्मिन् अष्टस्थानानि सन्ति - सूत्रस्थानम्, निदानस्थानम्, विमानस्थानम्, शरीरस्थानम्, इन्द्रियस्थानम्, चिकित्सास्थानम्, कल्पस्थानम्, सिद्धिस्थानं चेति।

(ख) भावविस्तारः

(1) युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।
आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धा स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः।।

(*श्रीमद्भगवद्गीता 17-15,8*)

(2) आहारशुद्धौ सत्त्वशुद्धिः, सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः।

(*छान्दोग्योपनिषद् 7/26/2*)

(3) अनारोग्यमनायुष्यमस्वर्ग्यं चातिभोजनम्।
अपुण्यं लोकविद्विष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत्।।

(*मनुस्मृतिः 2/57*)

(4) भोजनं प्राणरक्षार्थं विद्यते नात्रसंशयः।
अधिकं हानये तस्मात् युक्ताहारपरो भवेत्।।

(*चरकसंहिता व्याख्या*)

(5) मिताहारो नरः सोढुं शक्तः कष्टशतं सुखम्।
अनभ्यस्तो हि कष्टानामध्यशनो विपद्यते।।

(*सुमनो वाटिका*)

(6) तस्याशिताद्यादाहारात् बलवर्णञ्च वर्धते।
तस्यर्तुसात्म्यं विदितं चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।।

(*सूत्रस्थान 6/3*)

(7) प्रातः काले व्यायामः नित्यं दन्तविशोधनम्।
स्वच्छजलेन सुस्नानं बुभुक्षायाञ्च भोजनम्।।

पञ्चमः पाठः

वीरः सर्वदमनः

प्रस्तुत पाठ कविकुलगुरु महाकवि कालिदास की अमर कृति जगत् प्रसिद्ध "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" नाटक के सप्तम अङ्क से लिया गया है। इस नाटक की मूल कथा महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यानम् से ली गई है। इस नाटक में राजा दुष्यन्त शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करता है पर दुर्वासा ऋषि के शाप के कारण उसे भूल जाता है। उसके द्वारा ठुकराई गई शकुन्तला अपने पुत्र सर्वदमन के साथ महर्षि मरीचि के आश्रम में रह रही है। देवासुर संग्राम में विजय प्राप्त कर लौटते हुए दुष्यन्त मार्ग में मारीच ऋषि के आश्रम में विश्राम हेतु आते हैं वहीं पर उन्हें पुत्र एवं शकुन्तला की प्राप्ति होती है। रक्त का सम्बन्ध दुष्यन्त एवं सर्वदमन को मिलाता है। बालक सर्वदमन का शौर्यपूर्ण शैशव यहाँ चित्रित किया गया है।

दुष्यन्तः - (*निमित्तं सूचयित्वा*)

मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा।
पूर्वावधीरितं श्रेयो दुःखाय परिवर्तते ॥1॥

(*नेपथ्ये*)

मा खलु चापलं कुरु। कथं गत एवात्मनः प्रकृतिम्?

दुष्यन्तः - (*कर्णं दत्त्वा*)

अभूमिरियमविनयस्य। को नु खल्वेष निषिध्यते। (*शब्दानुसारेणावलोक्य सविस्मयम्*) **अये, को नु खल्वयम् अनुबध्यमानस्तपस्विनीभ्याम् अबालसत्त्वो बालः।**

अर्धपीतस्तनं मातुरामर्दक्लिष्टकेसरम्।
प्रक्रीडितुं सिंहशिशुं बलात्कारेण कर्षति॥2॥

बालः - **जृम्भस्व सिंह! दन्तास्ते गणयिष्ये।**

प्रथमा - **अविनीत! किं नोऽपत्यनिर्विशेषाणि षत्त्वानि विप्रकरोषि? हन्त। वर्धते ते संरम्भः । स्थाने खलु ऋषिजनेन सर्वदमन इति कृतनामधेयोऽसि।**

दुष्यन्तः - **किं न खलु बालेऽस्मिन् औरस इव पुत्रे स्निह्यति मे मनः? नूनमनपत्यता मां वत्सलयति।**

द्वितीया - **एषा खलु केसरिणी त्वां लङ्घयिष्यति यद्यस्याः पुत्रकं न मुञ्चसि।**

बालः - (*सस्मितम्*) **अहो बलीयः खलु भीतोऽस्मि।** (*इत्यधरं दर्शयति*)।

प्रथमा - **वत्स! एनं बालमृगेन्द्रं मुञ्च, अपरं ते क्रीडनकं दास्यामि।**

बालः - **कुत्र, देहि तत्** (*इति हस्तं प्रसारयति*)

द्वितीया - **सुव्रते! न शक्य एष वाचामात्रेण विरमयितुम्। गच्छ त्वम्। मदीये उटजे मृत्तिकामयूरस्तिष्ठति। तमस्योपहर।**

बालः – **अनेनैव तावत् क्रीडिष्यामि।** (*इति तापसीं विलोक्य हसति*)।

तापसी – **भवतु। न मामयं गणयति** (*राजानमवलोक्य*) **भद्रमुख! मोचयानेन बाध्यमानं बालमृगेन्द्रम्।**

दुष्यन्तः – **आकारसदृशं चेष्टितमेवास्य कथयति।** (*आत्मगतम्*)

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण
स्पृष्टस्य गात्रेषु सुखं ममैवम्।
कां निर्वृत्तिं चेतसि तस्य कुर्याद्
यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः॥3॥

(*बालमुपलालयन्*) **प्रकाशम्**

दुष्यन्तः – **अथ कोऽस्य व्यपदेशः?**

तापसी – **पुरुवंशः।**

दुष्यन्तः – (*आत्मगतम्*) **कथमेकान्वयो मम?** (*प्रविश्य*)

तापसी – **वत्स सर्वदमन! शकुन्तलावण्यं प्रेक्षस्व।**

बालः – **कुत्र वा ममाम्बा?**

दुष्यन्तः – (*आत्मगतम्*) **किं वा शकुन्तलेत्यस्य मातुराख्या?**

बालः – **रोचते मे एष मयूरः।** (*इति क्रीडनकमादत्ते*)

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

नाशंसे – न + आशंसे, संभावना नहीं करता हूँ।
स्पन्दसे – फड़कती हो।
वृथा – बेकार।
पूर्वावधीरितं – पूर्वम् अवधीरितम् (कर्मधा० स०) पहले से त्यागा हुआ।
आत्मनः – स्वयं की।
प्रकृतिम् – प्र + कृ + क्तिन् द्वि० ए० व०, स्वभाव को ।
निषिध्यते – नि + सिध् + कर्मवाच्य लट् प्र० पु० ए० व०, रोका जाता है।
अनुबध्यमानः – रोका जाता हुआ।
अबालसत्त्वो बालः – बालस्य सत्त्वम् इव सत्त्वं यस्य स बालसत्त्वः, न बालसत्त्व इति अबालसत्त्वः, जिसका प्रताप बच्चों जैसा न हो बड़े जैसा हो (महान् शूर)।

जृम्भस्व	–	जम्भाई लो।
अपत्यनिर्विशेषाणि	–	अपत्यैः निर्विशेषाणि, संतान जैसे।
सत्त्वानि	–	प्राणियों को।
विप्रकरोषि	–	कष्ट दे रहे हो।
संरम्भः	–	हठ/क्रोध।
कृतनामधेयोऽसि	–	नामकरण किया गया है।
औरस	–	आत्मीय।
स्निह्यति	–	स्नेह करता है।
अनपत्यता	–	न अपत्यता, नञ् तत्पुरुष, निःसन्तानता।
वत्सलयति	–	वत्सलं करोति (नामधातु) लट् पु० प्र० ए० व०, स्नेह से युक्त बनाता है।
क्रीडनकम्	–	खिलौना।
वाचामात्रेण	–	कहने मात्र से।
विरमयितुम्	–	रोकने के लिए।
उपहर	–	दे दो।
आकारसदृशम्	–	आकारेण सदृशम् (तृ० तत्पु०), आकार के समान।
चेष्टितमेवास्य	–	इसकी चेष्टा ही।
आत्मगतम्	–	मन ही मन।
निर्वृत्तिम्	–	आनन्द।
कृतिनः	–	कृत + णिनि, षष्ठी ए० व०, बनाने वाले।
प्ररूढः	–	प्र + रुह् + क्त, प्र० पु० ए० व०, उत्पन्न हुआ है।
व्यपदेशः	–	वंश।
एकान्वयः	–	एक एव अन्वयः यस्य सः, बहु० स०, एक ही वंश का।
शकुन्तलावण्यम्	–	शकुन्तस्य लावण्यम् ष० तत्पु०, पक्षी की सुन्दरता।

अभ्यासः

1. **संस्कृतभाषया उत्तरं देयम्**

(क) कस्य कवेः कस्मात् पुस्तकाद् गृहीतोऽयं पाठः?

(ख) बालः कीदृशं सिंहशिशुं कर्षति स्म?

(ग) तापसी बालाय क्रीडार्थं किं दत्तवती?

(घ) क्रीडापरस्य बालस्य मातुः किं नामधेयम्?

(ङ) बालाय किं रोचते?

2. रिक्तस्थानानां पूर्तिः करणीया

(क) अपत्यनिर्विशेषाणि .... विप्रकरोषि।
(ख) पुत्रे स्निह्यति मे .... ।
(ग) यद्यस्याः .... न मुञ्चसि।
(घ) अपरं क्रीडनकं ते .... ।
(ङ) .... चेष्टितमेवास्य कथयति।

3. निम्नाङ्कितेषु सन्धिच्छेदो विधेयः

गत एवात्मनः, औरस इव, दन्तास्ते, यद्यस्याः, शकुन्तलेत्यस्य, खल्वयम्, बालेऽस्मिन्, भीतोऽस्मि, कस्यापि, एकान्वयः, एवास्य, तमस्योपहर, मैवम्, इत्यधरम्, ममाम्बा, अनेनैव।

4. अधोलिखितेषु विग्रहं कृत्वा समासनाम लिखत

पूर्वावधीरितम्, अभूमिः, अविनयस्य, शब्दानुसारेण, सविस्मयम्, अबालसत्त्वः, सिंहशिशुम्, अनपत्यता, सस्मितम्, मृत्तिकामयूरः, बालमृगेन्द्रम्, एकान्वयः, आकारसदृशम्, बालस्पर्शम्।

5. अधोलिखितानां पदानां संस्कृतवाक्येषु प्रयोगः करणीयः

सविस्मयम्, कर्षति, स्निह्यति, केसरिणी, उटजे, व्यपदेशः, प्रेक्षस्व, ममाम्बा।

6. प्रकृतिप्रत्ययपरिचयो देयः

सूचयित्वा, प्रक्रीडितुम्, अवलोक्य, अनुबध्यमानः, निष्क्रान्ता, उपलभ्य, उपलालयन्।

7. स्वमातृभाषया सप्रसङ्गं व्याख्यायताम्

(क) मनोरथाय नाशंसे .... दुःखाय परिवर्तते।
(ख) अर्धपीतस्तनं .... बलात्कारेण कर्षति।
(ग) किं न खलु बालेऽस्मिन् .... मां वत्सलयति।

8. स्वमातृभाषया आशयं स्पष्टीकुरुत

अनेन कस्यापि कुलाङ्कुरेण .... यस्यायमङ्कात् कृतिनः प्ररूढः।।

योग्यताविस्तारः

नाटके समागतानां पारिभाषिकशब्दानां विवेचनम्–

1. अङ्कः

अङ्क इति रूढिशब्दो भावैः रसैश्च रोहयत्यर्थान्
नानाविधानयुक्तो यस्मात् तस्माद् भवेदङ्कः।।

यत्रार्थस्य समाप्तिर्यत्र च बीजस्य भवति संहारः।
किञ्चिदवलग्नबिन्दुः सोऽङ्क इति सदाऽवगन्तव्यः।। (*नाट्यशास्त्रम् 20/14-16*)
संस्कृतनाटकेषु पञ्च प्रभृति दश पर्यन्तम् अङ्काः भवन्ति। एकस्मिन्नङ्के प्रायशः कथायाः भागः पूर्णतामेति अङ्कस्य समाप्तौ रङ्गमञ्चतः सर्वाणि पात्राणि निर्गच्छन्ति।

2. **नेपथ्यम्**

कुशीलवकुटुम्बस्य गृहं नेपथ्यमुच्यते।
यत्राभिनेतारः नाटकानुरूपं वेशं धारयन्ति तत्स्थानं नेपथ्यमिति कथ्यते।

3. **आत्मगतम्**

अश्राव्यं खलु यद्वस्तु तदिहात्मगतं मतम्।
यदा कश्चिदभिनेता स्वं प्रति (मनसि) वार्तां करोति
अपरान् जनान् स्ववार्तां श्रावयितुं न वाञ्छति तदा
संवादोऽयं स्वगतम्, आत्मगतमि' ति वोच्यते।

षष्ठः पाठः

शुकशावकोदन्तः

प्रस्तुत पाठ कविकुलशिरोमणि महाकवि बाणभट्ट की अद्वितीय कथात्मक रचना 'कादम्बरी' के कथामुख भाग का एक अंश है। महाराज शूद्रक के दरबार में एक चाण्डाल-कन्या स्वर्ण-पिञ्जर में बन्द तोते को उपहार स्वरूप प्रस्तुत करती है। विश्राम के क्षणों में वही तोता महाराज को आपबीती सुनाता है कि वह किस प्रकार घनघोर विन्ध्याटवी में स्थित पम्पा सरोवर के तट पर जीर्ण सेमल के वृक्ष के कोटर से वृद्ध शबर के द्वारा निकाल कर फेंके जाने पर भयंकर दुपहरी में जाबालि मुनि के पुत्र हारीत के द्वारा आश्रम में लाया गया। सम्पूर्ण कथा कुतूहलपूर्ण एवं रोचक है।

अस्ति मध्यदेशालङ्कारभूता मेखलेव भुवो विन्ध्याटवी नाम। तस्यां च पम्पाभिधानं पद्मसरः। तस्य पश्चिमे तीरे महाजीर्णः शाल्मलीवृक्षः। तस्यैवैकस्मिन् कोटरे निवसतः कथमपि पितुरहमेव सूनुरभवम्। ममैव जायमानस्य प्रसववेदनया जननी मे लोकान्तरमगमत्। तातस्तु सुतस्नेहादन्तर्निगृह्य शोकं मत्संवर्धनपर एवाभवत्। परनीडनिपतिताभ्यः शालिवल्लरीभ्यस्तण्डुलकणान् शुककुलावदलितानि च फलशकलानि समाहृत्य मह्यमदात्। मदुपभुक्तशेषमेवाकरोदशनम्।

एकदा तु प्रत्यूषसि सहसैव तस्मिन् वने मृगयाकोलाहलध्वनिरुदचरत्। आकर्ण्य च तमहमुपजातवेपथुरर्भकतया भयविह्वलः पितुः पक्षपुटान्तरमविशम्। अचिराच्च प्रशान्ते तस्मिन् क्षोभितकानने मृगयाकलकले पितुरुत्सङ्गादीषदिव निष्क्रम्य कोटरस्थ एव शिरोधरां प्रसार्य किमिदमिति दिदृक्षुरभिमुखमापतच्छबरसैन्यमद्राक्षम्। मध्ये च तस्य प्रथमे वयसि वर्तमानं शबरसेनापतिमपश्यम्।

आसीच्च मे मनसि–'अहो मोहप्रायमेतेषां जीवितम्। आहारो मधुमांसादिः, श्रमो मृगया, शास्त्रं शिवारुतं, प्रज्ञा शकुनिज्ञानम्। यस्मिन्नेव कानने निवसन्ति तदेवोत्खातमूलमशेषतः कुर्वन्ति। इति चिन्तयत्येव मयि शबरसेनापतिः स आगत्य तस्यैव तरोरधश्छायायां परिजनोपनीतपल्लवासने समुपाविशत्। आपीतसलिलो भुक्तमृणालिकश्चोत्थायापगतश्रमः सकलेन सैन्येन सहाभिमतं दिशमयासीत्।

एकतमस्तु जरच्छबरस्तस्मिन्नेव तरुतले मुहूर्तमिव व्यलम्बत। अन्तरिते च सेनापतौ स सुचिरमारुरुक्षुस्तं वनस्पतिमामूलादपश्यत्। उत्क्रान्तमिव तस्मिन् क्षणे तदालोकनभीतानां शुककुलानामसुभिः। किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्। यतः स तमयत्नेनैव पादपमारुह्य फलानीव तस्य वनस्पतेः कोटरेभ्यः शुकशावकानग्रहीत्। अपगतासूंश्च कृत्वा क्षितावपातयत्।

तातस्तु तदवलोक्य विषादशून्यामश्रुजलप्लुतां दृशमितस्ततो विक्षिपन् पक्षसंपुटेनाच्छाद्य मां स्नेहपरवशो मद्रक्षणाकुलोऽभवत्। असावपि पापः क्रमेण शाखान्तरैः सञ्चरमाणो मत्कोटरद्वारमागत्य भुजङ्गभीषणं प्रसार्य बाहुं मुहुर्मुहुर्दत्तचञ्चुप्रहारमुत्कूजन्तमाकृष्य तातमपगतासुमकरोत् मां तु स्वल्पत्वात् कथमपि नालक्षयत्। उपरतं च तमवनितलेऽमुञ्चत्। अहमपि तच्चरणान्तराले प्रवेशितशिरोधरो निभृतमङ्कनिलीनस्तेनैव सह पवनवशसम्पुञ्जितस्य शुष्कपत्रराशेरुपरि पतितमात्मानमपश्यम्। यावच्चासौ तरुशिखरान्नावतरति तावदहं पितरमुपरतमुत्सृज्य नृशंस इव स्नेहरसानभिज्ञो भयेनैव केवलमभिभूयमानो लुठन्नितस्ततो नातिदूरवर्तिनस्तमालपादपस्य मूलदेशमविशम्।

अजातपक्षतया च मुहुर्मुहुर्मुखेन पततः स्थूलस्थूलं श्वसतो धूलिधूसरितस्य संसर्पतो मम समभून्मनसि–नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्। एवमुपरतेऽपि ताते यदहं जिजीविषामि। धिङ्मामकरुणमतिनिष्ठुरमकृतज्ञम्। खलं हि खलु मे हृदयम्। तातेन यत्कृतं सर्वं तदेकपदे मया विस्मृतम्। सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीवनाशा यदीदृगवस्थमपि मामायासयति जलाभिलाषः। दिवसस्य चेयमतिकष्टा दशा वर्तते। आतपसन्तप्तपांसुला भूमिः। पिपासावसन्नानि

गन्तुमनल्पमपि मे नालमङ्गकानि। अप्रभुरस्म्यात्मनः। सीदति मे हृदयम्। अन्धकारतामुपयाति मे चक्षुः। अपि नाम खलो विधिरनिच्छतोऽपि मे मरणमद्यैवोपपादयेत्।

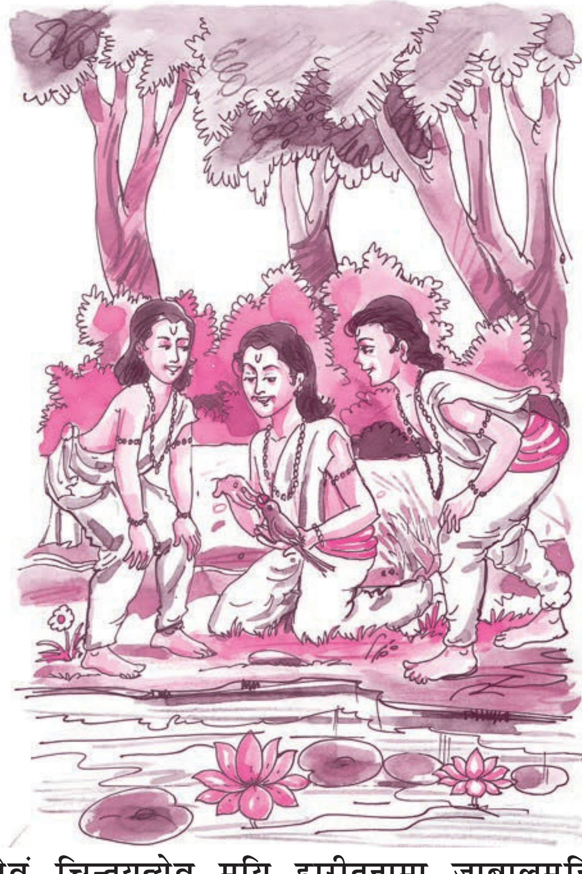

इत्येवं चिन्तयत्येव मयि हारीतनामा जाबालमुनितनयः सवयोभिरपरैर्मुनिकुमारकैः सह तेनैव पथा तदेव कमलसरः सिस्नासुरुपागमत्। प्रायेणाकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च भवन्ति सतां चेतांसि। यतः स तदवस्थमवलोक्य मां सरस्तीरमानाययत्, स्वयं चादाय सलिलबिन्दूनपाययत्। समुपजातप्राणं मां छायायां निधायाकरोत् स्नानविधिम्। अभिषेकावसाने सकलेन मुनिकुमारकदम्बकेनानुगम्यमानो मां गृहीत्वा तपोवनमगच्छत्।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

मध्यदेशालङ्कारभूता – मध्यश्चासौ देशश्च मध्यदेशः (कर्मधारय समास) तस्यालङ्कारभूता, (तत्पुरुष) मध्यदेश की शोभा बढ़ाने वाली।

विन्ध्याटवी – विन्ध्यस्य अटवी, विन्ध्य पर्वत पर लगा घना जंगल।

महाजीर्णः – महान् च असौ जीर्णः च (कर्मधारय) बड़ा पुराना

निवसतः – नि + वस् + शतृ षष्ठी ए०व०, रहने वाले

जायमानस्य – जन् + कर्मवाच्य + शानच् षष्ठी ए० व०, पैदा होते हुए।

अगमत् – गम् धातु लुङ् लकार प्र० पु० ए० व०, गई।

निगृह्य – नि + ग्रह् + क्त्वा > ल्यप्, रोककर।

परनीडनिपतिताभ्यः – परेषां नीडेभ्यः पतिताभ्यः दूसरों के घोंसलों से गिरी हुई।

शुककुलावदलितानि – शुकानां कुलैः अवदलितानि, तत्पुरुष, तोतों के झुण्ड द्वारा कतरे हुए।

फलशकलानि – फलानां शकलानि–खण्डानि, तत्पुरुष, फलों के टुकड़े।

समाहृत्य – सम् + आ + हृ + क्त्वा > ल्यप्, लाकर।

उपभुक्तशेषम् – उप + भुज् + क्त, उपभुक्तात् शेषम्, खाने से बचा हुआ।

अशनम् – अश् + ल्युट् > अन, भोजन।

प्रत्यूषसि – ऊषसम् प्रति, अरुणोदय से पूर्व।

मृगया – आखेटः, शिकार।

उपजातवेपथुः – उपजातः वेपथुः यस्य सः बहुव्रीहि, काँपता हुआ।

अर्भकतया – शावक होने से, शुकशावक का विशेषण।

पक्षपुटान्तरम् – पक्षयोः पुटस्यान्तरम्, तत्पुरुष, पंखों के पुटक के भीतर।

क्षोभितकानने – क्षोभितं काननं येन सः तस्मिन्, जंगल को व्याकुल करने वाले

प्रसार्य – प्र + सृ + णिच् + क्त्वा > ल्यप्, फैलाकर।

दिदृक्षुः – दृश् + सन् + उ, द्रष्टुम् इच्छुः, देखने का इच्छुक।

शिवारुतम् – शिवायाः – शृगाल्याः रुतम् शब्दम्, तत्पुरुष, सियारिनों का रोना।

शकुनिज्ञानम् – शकुनीनां ज्ञानम्, तत्पुरुष, पक्षिविषयक ज्ञान।

उत्खातमूलम् – उत्खातं मूलं यस्य तम् बहुव्रीहि, जिसकी जड़ें उखड़ गई हैं।

परिजनोपनीतम् – परिजनैः – भृत्यैः उपनीतम्, तत्पुरुष, सेवकों द्वारा लाए गये।

आपीतसलिलः – आपीतं सलिलं येन सः, पानी पीने पर।

अपगतश्रमः – अपगतः श्रमः यस्य सः, श्रम समाप्त होने पर।

अभिमतम् – अभि + मन् + क्त, स्वीकृतम्, प्रिय, इच्छित।

अन्तरिते – चले जाने पर।

आरुरुक्षुः – आ + रुह् + सन् + उ प्रत्यय, चढ़ने की इच्छा से।

उत्क्रान्तम् – उत् + क्रम् + क्त, निकल गये।

असुभिः – प्राणैः, प्राणों से।

जरच्छबरः – जरत् चासौ शबरः च भिल्लः, कर्मधारय, बूढ़ा भील।

अपगतासुम् – अपगताः असवः यस्य सः तम् बहुव्रीहि, प्राणहीन, मृत।

अश्रुजलप्लुताम् – अश्रूणां जलैः प्लुताम्, तत्पुरुष, आँसू के जल से भीगी हुई।

संचरमाणः – सम् + चर् + शानच्, संचार करता हुआ, चलता हुआ।

प्रवेशितशिरोधरः – प्रवेशिता स्थापिता शिरोधरा ग्रीवा येन सः, बहुव्रीहि, गर्दन को छिपाने वाला।

निभृतम् – नि + भृ + क्त, निश्चल।

नृशंसः – नरं शंसति हिनस्ति इति, क्रूर।

अभिभूयमानः – अभि + भू + शानच्, प्रभावित होता हुआ, आक्रान्त होता हुआ।

अजातपक्षतया – पंख उत्पन्न न होने से।

अभिमततरम् – अभि, मन् + क्त + तरप्, प्रियतर, अभीष्टतर।

जिजीविषामि – जीव् + सन् लट्, उ० पु०, ए०व०, जीना चाहता हूँ।

आतपसन्तप्तपांसुला – आतपेन घर्मेण सन्तप्ता पांसुला च धूलिः, तत्पुरुष + कर्मधारय समास, धूप से तपी धूल वाली।

सिस्नासुः – स्ना + सन् + उ, स्नातुमिच्छुः, नहाने की इच्छा रखने वाला।

मुनिकुमारकदम्बकेन – मुनीनां कुमाराणां कदम्बकेन वर्गेण, तत्पुरुष समास, मुनिकुमारों के समूह से।

अनुगम्यमानः – अनु + गम् + कर्मवाच्य + शानच् पु० प्र० ए० व०, पीछा किया जाता हुआ।

अभ्यासः

1. निम्नलिखितप्रश्नानां उत्तरम् संस्कृतेन लिखत

(क) पम्पाभिधानं पद्मसरः कुत्रासीत्?
(ख) शुकः क्व निवसति स्म?
(ग) शबराणां कीदृशं जीवनं वर्तते?
(घ) हारीतः कस्य सुतः आसीत्?
(ङ) जीवनाशा किं करोति?
(च) शुकस्य पिता कीदृशानि फलशकलानि तस्मै अदात्?
(छ) मृगयाध्वनिमाकर्ण्य शुकः कुत्र अविशत्?
(ज) शबरसेनापतिः कस्मिन् वयसि वर्त्तमानः आसीत्?
(झ) केषां किम् दुष्करम्?
(ञ) कः शुकस्य तातम् अपगतासुमकरोत्?

2. पाठमाधृत्य बाणभट्टस्य गद्यशैल्याः विशेषताः लिखत

3. मातृभाषया शबरसेनापतेः चरित्रम् लिखत

4. अधोलिखितानां भावार्थं लिखत

(क) किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्।
(ख) नास्ति जीवितादन्यदभिमततरमिह जगति सर्वजन्तूनाम्।
(ग) सर्वथा न कञ्चिन्न खलीकरोति जीवनाशा।
(घ) प्रायेण अकारणमित्राण्यतिकरुणार्द्राणि च भवन्ति सतां चेतांसि।

5. शुकशावकस्य आत्मकथां संक्षेपेण लिखत

6. अधोलिखितेषु शब्देषु प्रकृतिप्रत्ययविभागं कुरुत

समाहृत्य, आकर्ण्य, निष्क्रम्य, विक्षिपन्, उपरतम्, गृहीत्वा, अभिलाषः, संचरमाणः।

7. रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) अस्ति भुवो मेखलेव .... नाम।
(ख) ममैव जायमानस्य .... मे जननी मृता।
(ग) अहो मोहप्रायम् .... जीवितम्।
(घ) तातः .... मद्रक्षणे आकुलः अभवत्।
(ङ) सर्वथा न .... न खलीकरोति जीवनाश।

8. सन्धिविच्छेदं कुरुत

तस्यैवैकस्मिन्, तातस्तु, प्रत्यूषसि, अचिराच्च, चिन्तयत्येव, फलानीव, तावदहम्, तेनैव, चादाय।

योग्यताविस्तारः

पम्पा :- पम्पाभिधानं प्रसिद्धं सरः यद् अद्यत्वे पेन्नसिर इति नाम्नाभिधीयते। सरसः समीप एव ऋष्यमूकपर्वतो वर्तते पम्पा इति नदी अस्माद् एव सरसः निर्गता।

विन्ध्याटवी :- एका पर्वतश्रेणी या उत्तरभारतं दक्षिणभारतात् विभजति। सप्तकुलपर्वतेषु इयं परिगण्यते। इयं पर्वतमाला मध्यदेशस्य दक्षिणसीम्नि वर्तते।

हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि।
प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः॥ (*मनुस्मृतिः 2/21*)

एतासु पर्वतमालासु गहनानि वनानि सन्ति यानि 'विन्ध्याटवी' इति पदेनाभिधीयन्ते।

किमिव हि दुष्करमकरुणानाम्-इति अस्मिन् पाठे सूक्तिः। एतादृश्यः अन्याः सूक्तयोऽन्वेष्टव्याः।

सप्तमः पाठः

भव्यः सत्याग्रहाश्रमः

प्रस्तुत पाठ श्रीमती क्षमारावकृत-सत्याग्रहगीता के चतुर्थ अध्याय से उद्धृत किया गया है। आधुनिक कवयित्री ने साबरमती के आश्रम और महात्मा गाँधी के आदर्श आचरण का वर्णन इसमें किया है। संस्कृत कविता का वर्तमान प्रसंगों में प्रस्तुतीकरण लेखिका का उद्देश्य है। वस्तुतः आधुनिक युग में देश के कोने-कोने में जिस आतंकवाद की जड़ जमती जा रही है और अपने लक्ष्य (स्वार्थ) की सिद्धि में जिस तरह के नृशंस और निर्दय मार्ग अपनाये जा रहे हैं, वे राष्ट्र के लिए घातक हैं। आज उनके प्रतिरोध में प्रत्येक व्यक्ति को गाँधी बनना है, अन्याय के विरोध में खड़ा होना है और सत्य, अहिंसा तथा सदाचार का मार्ग अपनाना है। तभी संपूर्ण मानव का कल्याण होगा।

ततस्तीरे सबर्मत्या नाम्ना सत्याग्रहाश्रमः।
महात्मा स्थापयामास सदनं सानुयात्रिकः॥1॥

सत्यमेव प्रमाणं यन्मनोवाक्कायकर्मभिः।
तस्मिन् पुण्यनिवासे तद् यथार्थो हि स आश्रमः॥2॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ।
स्वदेशवस्तुनिष्ठा च निर्भीतरुचिसंयमः॥3॥

अन्त्यजानां समुद्धारो नवैतानि व्रतानि हि।
भारतोत्कर्षसिद्ध्यर्थमाश्रमस्य महात्मनः॥4॥

निर्ममो नित्यसत्त्वस्थो मिताशी सुस्मितान्ननः।
सुकलत्रः शिशुप्रेमी पितेवाश्रमवासिनाम्॥5॥

ध्यायन् क्लेशान् स्वबन्धूनां तद्धितैकपरायणः।
विराजते मुनिर्बुद्धो बोधिद्रुमतले यथा॥6॥

साक्षात्सत्यप्रदीपोऽयं दीप्यतेऽखिलभारते।
स्वबन्धूनामपाकुर्वन् हृदयान्मोहजं तमः॥7॥

बलं सर्वबलेभ्योऽपि सत्यमेवातिरिच्यते।
सत्यवानबलः श्रेयान् सबलात् सत्यवर्जितात्॥8॥

तद् ये चरन्ति धर्मेण प्रजा वा राज्यशासकाः।
समृद्धिर्जायते तेषामन्येषां तु क्षयो ध्रुवः॥9॥

इति तत्रभवान् गान्धीराख्याति सहवासिनः।
अनुयायिजनांश्चान्यान् वचसा लेखतोऽपि वा॥10॥

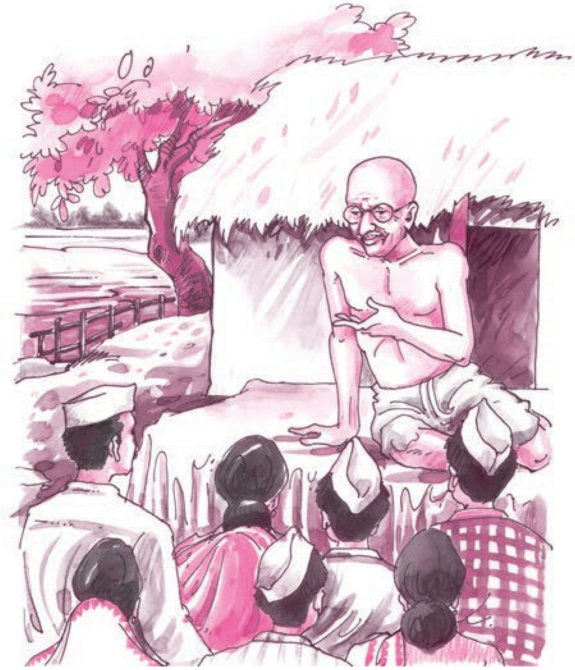

महात्मा प्राह-

अधर्ममपि दृष्ट्वा यः प्रतिबद्धुं न वाञ्छति।
सत्ये सत्यपि यो भीत्या न च तत् प्रतिपद्यते॥11॥

क्लीबयोरुभयोश्चापि निष्फलं जीवनं तयोः।
स्वार्थनाशभयाद् यत् तौ रक्षतोऽनृतजीवनम्॥12॥

हिंसामपि समाश्रित्य वरं मृत्युमुखे गतम्।
न पुनः स्वात्मरक्षार्थं कृतं निन्द्यं पलायनम्॥13॥

करोति मनसा हिंसा स हि भीरुः पलायिता।
आत्मनो मृत्युकातर्यादात्महिंसा करोति च॥14॥

अत एव मया दत्तं नाम सत्याग्रहाश्रमः।
सत्यानुयायियुक्ताया विनीतवसतेर्मम॥15॥

इति सत्यादिधर्माणाममोघं बलमद्भुतम्।
वर्णयन् ग्राहयामास व्रतानि सुबहून् गुरुः॥16॥

अपराधे कृतेऽप्यन्यैः सत्यसारे तदाश्रमे।
स्वीकृत्य दोषसर्वस्वमुपवासैस्तपस्यति॥17॥

आश्रमाद् बहिरन्यत्र लोकानां कलहेऽपि सः।
स्वमेव कारणं मत्वा तत् कलङ्केन दूयते॥18॥

आत्मवत्सर्वभूतानि पश्यतोऽस्य पदानुगाः।
गुणैः परवशीभूता व्यवर्धन्त सहस्त्रशः॥19॥

सर्वदाप्याचरिष्यामः सत्यादिनवकं व्रतम्।
इति जातसमुत्साहैः सधैर्यं निश्चितं जनैः॥20॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

सबर्मत्या – साबरमतीनामनद्याः, साबरमती नदी के।
सानुयात्रिकः – अनुयात्रिभिः सहितः बहु० स०, अपने अनुयायियों के साथ।
अस्तेयम् – अचौर्यम्, चोरी नहीं करना।
अपरिग्रहः – धनसञ्चयाभाववृत्तिः, धनसञ्चय न करने का स्वभाव।
रुचिसंयमः – रुचि-स्वाद पर नियन्त्रण रखना।
अन्त्यजानां समुद्धारः – हरिजनोद्धारः, हरिजनों का उद्धार।

नित्यसत्त्वस्थः	–	नित्यं सत्त्वे स्थितः सर्वदा सत्त्वगुण से युक्त।
मिताशी	–	परिमितभोजनवान्, मितम् अश्नाति तच्छीलः, कम भोजन करने वाला।
मृत्युकातर्याद्	–	मृत्योः कातर्यात् (दुःख) भयात्, मृत्यु के डर से।
सुस्मिताननः	–	सुस्मितं आननं यस्य सः, प्रसन्न मुख वाला।
सुकलत्रः	–	शोभनं कलत्रं यस्य सः, बहु० स०, सुन्दर स्त्री वाला।
ध्यायन्	–	ध्यै धातु शतृ० प्र० पु०, प्र० ए० व०, ध्यान करते हुए।
श्रेयान्	–	प्रशस्य शब्द ईयस् प्रत्यय, पुं० प्र० ए० व०, अधिक कल्याणकारी।
विनीतवसतेः	–	विनीता = वसतिः, विनीत वसतिः तस्याः, सज्जनों की वस्ती।
पदानुगाः	–	पदानि अनुगच्छन्ति ये ते, उपपद तत्पुरुष, पीछे चलने वाले।
सधैर्यम्	–	धैर्येण सह, अव्ययीभाव, धैर्यसहित।

अभ्यासः

1. अधोलिखितानां प्रश्नानामुत्तराणि संस्कृतभाषया देयानि

(क) अयं पाठः कस्माद् ग्रन्थात् संकलितः।

(ख) महात्मा (गाँधी) सत्याग्रहाश्रमं कस्याः (नद्याः) तीरे स्थापयामास?

(ग) आश्रमवासिनां कृते महात्मा कीदृशः आसीत्?

(घ) अस्मिन् पाठे महात्मनः तुलना केन सह कृता?

(ङ) समृद्धिः केषां जायते?

(च) सत्याग्रहाश्रमः इति नाम केन कथं च दत्तम्?

(छ) अस्य पाठस्य रचयित्री का?

(ज) महात्मनः व्रतानि कानि आसन्?

(झ) महात्मा केषां दोषैः उपवासमकरोत्।

(ञ) किम् पश्यतः गान्धिनः गुणैः जनाः तस्य पदानुगाः जाताः?

2. अधोलिखितश्लोकानां सान्वयं मातृभाषया अर्थम् लिखत

(क) अहिंसा सत्यमस्तेयं .... निर्भीतरुचिसंयमः।।

(ख) साक्षात् सत्यप्रदीपोऽयं .... हृदयान्मोहजं तमः।।

(ग) अधर्ममपि दृष्ट्वा .... तत् प्रतिपद्यते।।

3. अधोलिखितपदानां परिचयं दत्त

समुद्धारः, प्रतिबद्धुम्, समृद्धिः, ध्यायन्, दृष्ट्वा, समाश्रित्य, दत्तम्, मत्वा

4. सविग्रहम् समासनाम लिखत

(क) सत्याग्रहाश्रमम्
(ख) महात्मा
(ग) ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ
(घ) सुकलत्रः
(ङ) निष्फलम्

5. सत्याग्रहमहत्त्वमधिकृत्य मातृभाषया दश वाक्यानि लिखत

6. अधोलिखितशब्दानां सन्धिच्छेदं कुरुत

नवैतानि, मिताशी, मुनिर्बुद्धः, दीप्यतेऽखिलभारते, सत्यपि, पितेव, व्यवर्धन्त, सर्वदाप्याचरिष्यामः।

7. रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) ततस्तीरे .... सत्याग्रहाश्रमः।
(ख) अहिंसा .... प्रतिग्रहौ।
(ग) अधर्ममपि .... वाञ्छति।
(घ) सत्ये सत्यपि .... प्रतिपद्यते।
(ङ) आश्रमाद् .... दूयते।

योग्यताविस्तारः

भावविस्तारः

(1) .... इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि। (*यजुर्वेदः - 1/5*)

(2) सत्यमेवानृशंसं च राजवृत्तं सनातनम्।
तस्मात्सत्यात्मकं राज्यं सत्ये लोकः प्रतिष्ठितः।।

(3) सत्यस्य वचनं साधु न सत्याद् विद्यते परम्।
सत्येन विधृतं सर्वं सर्वं सत्ये प्रतिष्ठितम्।।

(4) सत्यार्जवं परं धर्ममाहुर्धर्मविदो जनाः।
दुर्ज्ञेयः शाश्वतो धर्मः स च सत्ये प्रतिष्ठितः।।

(5) नासत्यवादिनः सख्यं पुण्यं न यशो भुवि।
दृश्यते नापि कल्याणं कालकूटमिवाश्नतः।।

(6) 'सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम्।' (*योगदर्शनम् - 2/36*)

(7) सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन्। (*ऋग्वेदः*)

(8) यः समुत्पतितं क्रोधं क्षमयैव निरस्यति।
यथोरगस्त्वचं जीर्णां स वै पुरुष उच्यते।।
(*वाल्मीकिरामायणम् - 5/53/6*)

(9) अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। (*योगदर्शनम्, साधनपादः*)

(10) निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्।।
(*श्रीमद्भगवद्गीता-4/21*)

अष्टमः पाठः

सङ्गीतानुरागी सुब्बण्णः

प्रस्तुत पाठ कन्नड़ भाषा के प्रख्यात साहित्यकार मास्ति वेङ्कटेश अय्यङ्गार विरचित सुब्बण्ण शीर्षक उपन्यास के संस्कृत अनुवाद से संकलित किया गया है।

इसके अनुवादक हो.ना. वेङ्कटेश शर्मा हैं। इस उपन्यास का नायक सुब्बण्ण एक पौराणिक शास्त्री का पुत्र है। बचपन से ही उसकी संगीत में रुचि है। आगे चलकर वह महान् संगीतकार बनता है। प्रस्तुत अंश में उसके बचपन की एक घटना वर्णित है।

सुब्बण्णस्य सङ्गीते यः सहजाभिलाषः आसीत्, स एकदा राजभवने संवृत्तया सङ्गत्या पुनरधिकं दृढीबभूव। एकस्मिन् दिने पुत्रेण साकं पुराणिकशास्त्री राजभवनमेत्य तत्रान्तःपुरस्त्रीजनसमक्षे पुराण-प्रवचनमारभमाण आदौ स्वपुत्रेण शुक्लाम्बरधरमित्यादिश्लोकं गापयामास। तच्छ्रुत्वा तत्रत्याः सर्वे पर्यनन्दन्। अथ किञ्चित्कालानन्तरं तत्र समागतो राजा समुपविश्य पुराणमाकर्णयति स्म। पितुः पार्श्वे उपविष्टः सुब्बण्णः पुराणप्रवचनं कुतूहलेन शृण्वन्नेव मध्ये महाराजमभि सविस्मयं पश्यति स्म। महाराजस्य सुन्दरं मुखम्, मुखे बृहत्ति-लकालङ्कारः, तत्रापि विशालस्य गण्डस्थलस्य शोभावहं श्मश्रुकूर्चम् इत्यादि सर्वमपि तस्य विस्मयकारणमासीत्। राजापि तं बालकं द्वित्रिवारमभिवीक्ष्य चतुरोऽयं बाल इत्यमन्यत। एवमवसिते पुराणे राजा शास्त्रिणमुद्दिश्य भोः, एष बालः भवत्कुमारः किम्? इत्यपृच्छत्। आम्, महाप्रभो, इति शास्त्री प्रत्युवाच। पुनः स्मयपूर्वकं राजा बालं सम्बोध्य अये वत्स, किं भवानपि पितृवत् पुराणप्रवचनं करिष्यति! इति पर्यपृच्छत्। तदा स बालः-अहं पुराणप्रवचनं न करोमि। सङ्गीतं गायामीति व्याहरत्। तदा राजा-आह, तथा ननु। तर्हि एकं गानं

शृणुमस्तावत् इत्यवदत्। अनुपदमेव सुब्बण्णः श्रीराघवं दशरथात्मज-मित्यादिश्लोकं सङ्गीतमार्गेण अश्रावयत् तदन्ते पुनः सः कस्तूरी-तिलकमित्यादिश्लोकोऽपि मम कण्ठस्थोऽस्तीत्यगदत्।

महाराजस्य बहु सन्तोषोऽभवत्। एवं परितुष्टो राजा पारितोषिकत्वेन बालाय सताम्बूलमुत्तरीयवस्त्रं दत्वा, हे वत्स, त्वं मेधाव्यसि सुष्ठु सङ्गीतं शिक्षित्वा सम्यग्गातुं भवान् अभ्यस्यतु। इतोऽप्यधिकं पारितोषिकं भवते वयं दास्याम इति बालकमुक्त्वा पुनश्च शास्त्रिणमुद्दिश्य भोः शास्त्रिणः कुमारः चतुरोऽस्ति। शिक्षणं सम्यक् क्रियताम्। प्रायः महाकुशलो भविष्यतीत्यशंसत्। तदनन्तरं शास्त्री च पुत्रश्च स्वगृहाय संन्यवर्तेताम्।

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

सङ्गीतानुरागी	-	सङ्गीत + अनुरागी सङ्गीते अनुरागः यस्य सः (बहुव्रीहि स०) सङ्गीत में अनुराग रखने वाला।
अनुरागी	-	अनुराग + णिनि, प्रेमी।
सहजाभिलाषः	-	सहज + अभिलाषः, सहजः अभिलाषः (कर्मधारय स०) स्वाभाविकी इच्छा।
संवृत्तया	-	सं + वृत् + क्त + स्त्रीलिंग तृतीया ए० व०, होने वाली।
सङ्गत्या	-	सं + गम् + क्तिन् + स्त्री० लि० तृतीया एकवचन, सङ्गति से।
पुनरधिकम्	-	पुनर् + अधिकम् (संयोग), फिर अधिक।
दृढीबभूव	-	अदृढा दृढा बभूव दृढ + च्वि + भू लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन, प्रबल हो गयी।
राजभवनमेत्य	-	राजभवनम् + एत्य (सं.), राजभवन में आकर।
एत्य	-	आ+ इ + क्त्वा >ल्यप्; आकर।
तत्रान्तःपुरस्त्रीजनसमक्षे	-	तत्र + अन्तःपुरस्त्रीजनसमक्षे, अन्तःपुर की स्त्रियों के सामने।
अन्तःपुरस्त्रीजनसमक्षे	-	अन्तःपुरस्त्रीजनानां समक्षे षष्ठी तत्पु०, अन्तःपुर की स्त्रियों के सम्मुख।

पुराणप्रवचनमारभमाण – पुराणप्रवचनम् + आरभमाण (सं)
पुराणप्रवचनम् – पुराणस्य प्रवचनम् षष्ठी तत्पु०, पुराण की कथा।
आरभमाणः – आ + रभ् + शानच्, आरंभ करते हुए।
गापयामास – गै + णिच् + लिट् ल० प्रथम पुरुष एकवचन, गवाया।
तच्छ्रुत्वा – तत् + श्रुत्वा, यह सुनकर।
तत्रत्याः – तत्र + त्यप् प्रत्यय पुं० प्रथमा वि० बहु० व०, वहाँ उपस्थित।
पर्यनन्दन् – परि + नन्द् + लङ् लकार प्रथम पुरुष बहुवचन, प्रसन्न हुए।
किञ्चित्कालानन्तरम् – कश्चित् कालः इति किञ्चित्कालः कर्मधारय समास तस्य अनन्तरं षष्ठी तत्पुरुष, कुछ समय पश्चात्।
समागतः – सम् + आ + गम् + क्त पुं० प्र० वि०, ए० व०, आया हुआ।
समुपविश्य – सम् + उप + विश् + क्त्वा >ल्यप्, पास बैठकर।
आकर्णयति स्म – स्म के कारण लट्लकारार्थ भूतकाल, सुन रहा था।
उपविष्टः – उप + विश् + क्त पु० प्र० वि० ए० व०, बैठा हुआ।
शृण्वन्नेव – शृण्वन् + एव सुनते हुए ही।
सविस्मयम् – विस्मयेन सह अव्ययीभाव समास, आश्चर्य सहित।
बृहत्तिलकालङ्कारः – बृहत् तिलकम् इति बृहत्तिलकम् कर्मधारय समास बृहत्तिलकम् एव अलङ्कारः यस्य सः, विशाल तिलक धारण किये हुए।
गण्डस्थलस्य – कपोल या गाल का।
शोभावहम् – शोभाम् आवहति उप० तत्पु०, शोभा देने वाला।
श्मश्रुकूर्चम् – श्मश्रवः च कूर्चं च तेषां समाहारः समाहारद्वन्द्व, दाढ़ी और मूँछ।
राजापि – राजा + अपि, राजा भी।
अभिवीक्ष्य – अभि + वि + ईक्ष् + क्त्वा >ल्यप्, देखकर।
चतुरोऽयम् – चतुरः + अयम्, चतुर यह।
इत्यमन्यत – इति + अमन्यत, ऐसा माना।
अवसिते – अव + षो + क्त, सप्तमी वि० ए० व०, समाप्त होने पर।
उद्दिश्य – उत् + दिश् + क्त्वा >ल्यप्, लक्ष्य करके।
भवत्कुमारः – भवतः कुमारः षष्ठी तत्पु०; आपका पुत्र।

इत्यपृच्छत् – इति + अपृच्छत्, ऐसा पूछा।

प्रत्युवाच – प्रति + उवाच, प्रति + ब्रू लिट् लकार प्र० पु०, ए० व०, कहा।

स्मयपूर्वकम् – स्मयः पूर्वं यस्मिन् तत् बहु० स०, मुस्कुराते हुए।

सम्बोध्य – सम् + बुध् + णिच् + क्त्वा >ल्यप्, सम्बोधित करके।

पर्यपृच्छत् – परि + अपृच्छत्, पूछा।

गायामीति – गायामि + इति, गाता हूँ।

व्याहरत् – वि + आ + हृ + लङ् प्र० पु० ए० व०, कहा।

प्रगीय – प्र + गै + क्त्वा > ल्यप्, गाकर।

तदन्ते – तस्य अन्ते, ष० तत्पु०, उसके अन्त में।

श्लोकोऽपि – श्लोकः + अपि, श्लोक भी।

कण्ठस्थः – कण्ठे तिष्ठति, उपपद तत्पु, स्मरण।

अगदत् – गद् + लङ् ल० प्र० पु० ए० व०, बोला।

सन्तोषोऽभवत् – सन्तोषः + अभवत्, सन्तोष हुआ।

परितुष्टः – परि + तुष् + क्त; पुं प्र० वि०, ए० व०, सन्तुष्ट हुआ।

सताम्बूलम् – ताम्बूलेन सहितम्, बहुव्रीहि स०, (ताम्बूलेन सह वर्तमानम्), पान सहित।

मेधाव्यसि – मेधावी + असि, बुद्धिमान् हो।

सम्यग्गातुम् – सम्यक् + गातुम्, अच्छी तरह गाने के लिए।

अभ्यस्यतु – अभि + अस् (दिवादिगण) लोट् ल०, प्र०, पु०, ए० व०, अभ्यास करो।

इतोऽप्यधिकम् – इतः + अपि + अधिकम्, इससे भी अधिक।

उक्त्वा – वच् + क्त्वा, बोलकर।

पुनश्च – पुनः + च, और फिर।

क्रियताम् – कृ + कर्म० लोट् लकार प्र० पु०, ए० व०।

भविष्यतीत्यशंसत् – भविष्यति + इति + अशंसत्, होगा ऐसा कहा।

अशंसत् – शंस् + लङ् प्र० पु० ए० व०, कहा।

तदनन्तरम् – तस्मात् अनन्तरम् पञ्चमी तत्पु०, इसके बाद।

संन्यवर्तेताम् – सम् + नि + वृत् : लङ् प्र० पु० द्वि० व०, लौट गए।

अभ्यासः

1. संस्कृतेन उत्तरं दीयताम्

(क) सुब्बण्णस्य सहजाभिलाषः कस्मिन् आसीत्?
(ख) पुराणिकशास्त्री केन सह राजभवनम् अगच्छत्?
(ग) पुराणिकशास्त्री स्वपुत्रेण किं गापयामास?
(घ) पुराणप्रवचनं शृण्वन् सुब्बण्णः महाराजं कथं पश्यति स्म?
(ङ) महाराजस्य विस्मयकारणं किम् आसीत्?
(च) राजा बालं कति वारम् अपश्यत्?
(छ) राजा बालं किम् अपृच्छत्?
(ज) स बालः राजानं किं व्याहरत्?
(झ) परितुष्टः राजा बालाय किम् अयच्छत्?
(ञ) राज्ञः कथनानन्तरं शास्त्री तत्पुत्रः च कुत्र अगच्छताम्?

2. रेखाङ्कितानि पदानि आश्रित्य प्रश्ननिर्माणं कुरुत

(क) सुब्बण्णस्य सङ्गीतेऽभिलाषः राजभवने संवृत्तया <u>सङ्गत्या</u> दृढीबभूव।
(ख) तच्छ्रुत्वा <u>तत्रत्याः</u> सर्वे पर्यनन्दन्।
(ग) समागतो <u>राजा</u> पुराणम् आकर्णयति स्म!
(घ) <u>सुब्बण्णस्य</u> पितुः पार्श्वे महाराजं सविस्मयं पश्यति स्म।
(ङ) <u>महाराजस्य</u> मुखे तिलकालङ्कारः आसीत्।
(च) राजा <u>बालाय</u> सताम्बूलम् उत्तरीयवस्त्रम् अयच्छत्।

3. विशेष्यैः सह विशेषणानि संयोज्य मेलयत

विशेषण	**विशेष्य**
संवृत्तया	श्मश्रुकूर्चम्
समागतः	श्लोकः
सविस्मयम्	मुखम्
सुन्दरम्	गण्डस्थलस्य
विशालस्य	सङ्गत्या
कण्ठस्थः	महाराजम्
शोभावहम्	राजा।

4. आशयं स्पष्टीकुरुत

(क) अहं पुराणप्रवचनं न करोमि। सङ्गीतं गायामि।
(ख) त्वं मेधावी असि सुष्ठु सङ्गीतं शिक्षित्वा सम्यक् गातुं भवान् अभ्यस्यतु।

5. कोष्ठकशब्दैः सह विभक्तिं प्रयुज्य रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) .... दिने पुराणिकशास्त्री राजभवनम् अगच्छत् (एक)

(ख) .... पार्श्वे उपविष्टः सुब्बण्णः महाराजं सविस्मयं पश्यति स्म। (पितृ)

(ग) राजा .... सम्बोध्य पर्यपृच्छत्। (बाल)

(घ) त्वं .... असि। (मेधाविन्)

(ङ) पारितोषिकं .... वयं दास्यामः (भवत्)

6. अर्थं लिखित्वा संस्कृतवाक्येषु प्रयोगं कुरुत

साकम्, पार्श्वे, पत्र, सुष्ठु, सम्यक्, पुनः।

7. पाठात् विलोमपदानि चित्वा लिखत

आगत्य, अत्रत्याः, परागतः, दूरे, उदतरत्, प्रारब्धे, कदा, मूर्खः, असन्तोषः, अल्पम्।

योग्यताविस्तारः

1. कस्तूरीतिलकं ललाटपटले वक्षःस्थले कौस्तुभम्।
नासाग्रे वरमौक्तिकं करतले वेणुः करे कङ्कणम्॥
सर्वाङ्गे हरिचन्दनं सुललितं कण्ठे च मुक्तावली।
गोपस्त्रीपरिवेष्टितो विजयते गोपालचूडामणिः॥

अस्मिन् पाठे उल्लिखितस्य अस्य श्लोकस्य सस्वरं गायनस्य अभ्यासः करणीयः।

2. अस्मिन् पाठे राज्ञः चरित्रे तेन कृते सुब्बण्णस्य सत्कारे किं वैशिष्ट्यम् इति अन्विच्छत।

नवमः पाठः

वस्त्रविक्रयः

प्रस्तुत पाठ महामहोपाध्याय पं. मथुराप्रसाद दीक्षितकृत "भारत-विजयनाटकम्" के प्रथमाङ्क से संकलित है। अग्नि से जली हुई शाहजहाँ की कुमारी की औषधि-चिकित्सा करने के पश्चात् विदेशी (अंग्रेज) भारत सम्राट् (शाहजहाँ) से बंगाल में निवास के लिए भूमि तथा वस्त्रों के क्रय और विक्रय के लिए राजमुद्राङ्कित प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लेता है। भारतीय जुलाहे स्वनिर्मित वस्त्रों को बेचने के लिए बाजार में उपस्थित होते हैं। वहाँ वस्त्र व्यापारियों के साथ जुलाहों का वस्त्र-विक्रय हेतु वार्तालाप होता है। उसी समय विदेशी गौराङ्ग का प्रवेश होता है। उसके हाथ में राजकीय मुद्रा से अंकित प्रमाणपत्र है। वह प्रमाणपत्र दिखाकर बहुत कम मूल्य देकर वस्त्र खरीद लेता है। वह जुलाहों को बेंत से पीटता है और उनके द्वारा निर्मित सभी वस्त्र स्वयं को देने का निर्देश देता है। यही प्रसंग इस पाठ में वर्णित है।

(*ततः प्रविशन्ति पटं विक्रेतुं क्रेतुं च कश्चित्तन्तुवायः श्रेष्ठिनौ च*)

श्रेष्ठी - **तन्तुवाय! किमस्य पटस्य मूल्यम्?**

तन्तुवायः - **विंशत्यधिकं शतम्।**

श्रेष्ठी - **नहि,नहि, किञ्चिदधिकमेतत्। शतं मूल्यं गृह्णीष्व**
(*ततः प्रविशति सानुचरो वैदेशिको गौराङ्गः। स राजमुद्राङ्कितप्रमाणपत्रं दर्शयित्वा श्रेष्ठिनौ तन्तुवायञ्च भर्त्सयति।*)

वै०गौराङ्गः - **तन्तुवाय! पश्य राजमुद्राङ्कितं प्रमाणपत्रम्। न त्वं विक्रेतुं प्रभुः।**

तन्तुवायः - **तर्हि किमहमेनं पटं कुर्याम्?**

वै०गौराङ्गः - **इमं पटं मह्यं देहि, अहमेनं पटं विक्रेष्ये, गृह्णीष्व इमाः पञ्चाशन्मुद्राः।** (*इति पञ्चाशन्मुद्रां ददाति*)।

तन्तुवायः - (*साश्चर्यमिव पश्यन्*) **किमिदं विधीयते? कथमेतेन मम कुटुम्बस्य भरणपोषणे भविष्यतः। षड्भिर्मासैः कथमपि रात्रिन्दिवं परिश्रम्य निष्पादितोऽयं पटः।**

वै०गौराङ्गः - **इमा मुद्रा गृह्णीष्व, नाहं किमपि जानामि। मौनमास्स्व, गच्छ। अपरञ्च पटं निर्माय मत्समीप एवानय। युष्मत्कुटुम्बरक्षायै न प्रतिज्ञा कृता मया। कथं रक्षा भवेदेतत् त्वं जानीहि व्रजाधुना॥**

(*स मुद्रा न गृह्णाति अथापरस्तन्तुवायः पटविक्रयार्थं प्रविश्य पटक्रयार्थं श्रेष्ठिनं लक्षयति।*)

तन्तुवायः – **श्रेष्ठिन्। गृहाण पटम्।**

श्रेष्ठी – (*भ्रूसंज्ञया*) **अयं क्रेष्यति। नाहं क्रेतुं शक्नोमि।**

तन्तुवायः – **कस्मात्?**

श्रेष्ठी – **अस्य समीपे राज्ञः प्रमाणपत्रम् अयमेव क्रेष्यति, नापरः।**

वै०गौराङ्गः – **इत आगच्छ।** (*तन्तुवायमाह्वयति, प्रमाणपत्रं दर्शयति। पटं गृह्णाति*) **गृहाणेमाश्चत्वारिंशन्मुद्राः।** (*इति मुद्रा ददाति।*)

तन्तुवायः – **महाराज! किमिदं विधीयते? किमयमेव न्यायः?**

वै०गौराङ्गः – **गच्छ गच्छ। नाहं न्यायमन्यायं वा जानामि। यन्मया निश्चीयते दीयते च तदेव मूल्यम्।** (*उभौ तद्दत्तं मूल्यं गृह्णीतः।*)

उभौ तन्तुवायौ – **नातः परं पटं निर्मास्यावः** (*इत्युक्त्वा गच्छतः*)

वै०गौराङ्गः – (*अनुचरमुद्दिश्य*) **पश्य। एताभ्यां बह्वीर्मुद्रा ग्रहीष्ये। अनिर्वचनीयम् एतत्पटयोः सौन्दर्यम्। अति-सूक्ष्मतरोऽयं पटः । पश्य, एतस्य पञ्चषैः पटलैः परिवेष्टितमप्यपटमेव - प्रतीयतेऽङ्गम्। आः कथमेतत्समक्षमस्मद्देशीयानां पटानां विक्रयो भविष्यति, इति हतमस्मद्देशीयं वाणिज्यम्।** (*पुनर्विचिन्त्य*)

एतत्सूक्ष्मपटस्य निर्मितिविधेरुन्मूलनेऽहं क्षमो
निर्मातॄनिह दण्डताडनपरस्तान् मोचयिष्याम्यतः।
कौशल्यं ह्रियतामधस्तदधिकं वाणिज्यमत्युन्नतं
देशस्यास्य समुन्नतिर्जनकथामात्रे समाधीयताम्॥

दौवारिकः – (*प्रविश्य*) **जयतु जयतु देवः।**

वै०गौराङ्गः – **दौवारिक! सत्वरं त्रिचतुरांस्तन्तुवायान् समानय।**

दौवारिकः – **यद्देव आज्ञापयति।** (*बहिर्गत्वा त्रीन् तन्तुवायान् समानीय प्रविशति।*)

वै०गौराङ्गः - (*तन्तुवायानुद्दिश्य*) **भो भो! यूयं निर्मितान् पटान् मह्यं दत्त।**

तन्तुवायाः - **न वयमयोग्यमूल्यत्वात् पटं निर्मामः।**

वै०गौराङ्गः - **अस्तु शोभनं पटं निर्माय मह्यं दत्त, योग्यं मूल्यं भविष्यति। गृहाण इमाः मुद्राः** (*इति पञ्चदशमुद्रा ददाति, ते न गृह्णन्ति, हठात्तेषां वसने निबध्य गलहस्तेन निष्कासयति*)।

तन्तुवायाः - (*द्वारि स्थिताः*) **महाराज! न वयं शतमूल्यं पटं पञ्चदशभिरेव मुद्राभिर्निर्मास्यामः।**

वै०गौराङ्गः - (*साक्षेपम्*) **क इमे कोलाहलं कुर्वन्ति** (*द्वारि गत्वा सामर्षम्, कशया तांस्ताडयति।*) **गच्छत अपरं शोभनं पटं निर्माय समानयत** (*मुद्राः प्रक्षिप्य ते गच्छन्ति।*)

वै०गौराङ्गः - (*अनुचरमुद्दिश्य*) **भो!भो! अपरांस्त्रिचतुरांस्तन्तु-वायानानयत।** (*स निर्गत्य चतुरस्तन्तुवायानानीय*) **महाराज! एते समागताः।**

वै०गौराङ्गः - (*तन्तुवायानभिलक्ष्य*) **निर्मितान् कौशेयपटान् मह्यं दत्त।**

तन्तुवायाः - **न वयं पटान्निर्मामः।**

वै०गौराङ्गः - **मिथ्यैतत्। यूयं पटान्निर्माय श्रेष्ठिनां सविधे विक्रीणीध्वे।** (*सर्वान् कशया ताडयितुं भर्त्सयति*)

सर्वे - **न वयं निर्मामः।** (*इति बद्धहस्तपुटाः कम्पन्ते।*)
(*निष्क्रान्ताः सर्वे*)

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

तन्तुवायः	-	जुलाहा।
वैदेशिकः	-	विदेशी।
भर्त्सयति	-	भर्त्स् + लट् प्रथम पुरूष एकवचन, डाँटता है।
रात्रिंदिवम्	-	दिन रात।
श्रेष्ठी	-	सेठ।
लक्षयति	-	दिखलाता है।

अनिर्वचनीयम्	–	अवर्णनीय (जिसका वर्णन करना सम्भव नहीं है।)
पञ्चषैः पटलैः	–	पाँच छः परतों से।
परिवेष्टितम्	–	ढका हुआ।
सूक्ष्मपटस्य	–	महीन वस्त्र के।
निर्मितिविधिः	–	निर्माण की रीति।
कौशल्यम्	–	निपुणता।
अयोग्यमूल्यत्वात्	–	अनुचित कीमत के कारण।
हठात्	–	बलपूर्वक।
कोलाहलम्	–	शोर।
कशया	–	कोड़े से।
कौशेयपटान्	–	रेशमी वस्त्रों को।
विक्रीणीध्वे	–	वि + क्री + लट् म० पु० बहुवचन, बेचते हो।

अभ्यासः

1. अधोलिखितानां प्रश्नानामुत्तराणि संस्कृतभाषया देयानि

(क) अयं पाठः कस्मात् ग्रन्थात् सङ्कलितः, कश्च तस्य प्रणेता?
(ख) वैदेशिको गौराङ्गः किं संदर्श्य श्रेष्ठिनौ तन्तुवायञ्च भर्त्सयति?
(ग) तन्तुवायेन कथं पटः निष्पादितः?
(घ) यन्मया निश्चीयते दीयते च तदेव मूल्यमिति कथनं कस्यास्ति?
(ङ) तन्तुवायाः कीदृशस्य पटस्य निर्माणमकुर्वन्?
(च) यूयं निर्मितान् पटान् मह्यं दत्त इति कः कान् प्रति कथयति?
(छ) गौराङ्गः तन्तुवायान् कथं निष्कासयति?
(ज) वैदेशिको गौराङ्गः तन्तुवायान् कया ताडयितुं भर्त्सयति?

2. रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) कथमेतेन मम कुटुम्बस्य .... भविष्यतः।
(ख) अनिर्वचनीयम् .... सौन्दर्यम्।
(ग) कथमेतत्समक्षमस्मद्देशीयानां .... विक्रयो भविष्यति।
(घ) शोभनं पटं निर्माय मह्यं .... योग्यं .... भविष्यति।
(ङ) यूयं पटान् निर्माय .... सविधे विक्रीणीध्वे।

3. सप्रसङ्गं व्याख्यायन्ताम्

(क) युष्मत्कुटुम्बरक्षायै .... जानीहि व्रजाधुना।

(ख) अनिर्वचनीयमेतत्पटयोः सौन्दर्यम्। अतिसूक्ष्मतरोऽयं पटः। पश्य, एतस्य पञ्चषैः पटलैः परिवेष्टितमप्यपटमेव प्रतीयतेऽङ्गम्।

(ग) न वयमयोग्यमूल्यत्वात् पटं निर्मामः।

4. सन्धिविच्छेदः क्रियताम्

विंशत्यधिकम्, मुद्राङ्कितम्, विधेरुन्मूलनम्, मोचयिष्याम्यतः, सामर्षम्, मिथ्यैतत्।

5. 'एतत्सूक्ष्मपटस्येति' श्लोकस्य स्वमातृभाषया अनुवादः कार्यः

6. अधोलिखितेषु पदेषु धातुं प्रत्ययं च पृथक्कृत्य लिखत

विक्रेतुम्, अनिर्वचनीयम्, विचिन्त्य, गत्वा, निबध्य, निर्माय, अभिलक्ष्य।

योग्यताविस्तारः

अग्निदग्धायाः शाहजहाँकुमारिकायाः चिकित्सा गेवरियलवाऊटनेन विहिता। केषाञ्चित् ऐतिह्यविदां मतानुसारं सत्थामसमहोदयेन विहिता। अनन्तरमारोग्यं जातम्। पुनर्बङ्गाधिपतेः शाहजादाराजकुमारशुज्जापत्न्या अपि चिकित्सा अनेनैव कृता, आरोग्यं च प्राप्तम्। पुनः फरुखशियरसम्राज आरोग्यं सर्जनविलियमहेमिल्टनद्वारा जातम्।

दशमः पाठः

यद्भूतहितं तत्सत्यम्

प्रस्तुत कथा विश्वप्रसिद्ध संस्कृत कथाकार आचार्य केशवचन्द्र दाश लिखित कथासंग्रह से संकलित की गयी है। भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही दादा-दादी और नाना-नानी की कहानियाँ प्रचलित हैं। परम्परागत रूप में लिखी हुई ये कथाएँ बालपाठकों के मानसिक संस्कार को बनाये रखने में सक्षम हैं।

प्रस्तुत कथा में उस सत्य की वास्तविक सत्यता प्रमाणित की गयी है जो सदैव विश्व के लिए श्रेयस्कर हो।

एकस्मिन् ग्रामोपान्ते पद्मिनी नाम्नी एका पुष्करिणी आसीत्। तत्र ग्रामस्य जनाः स्नानं कुर्वन्ति। वसनं क्षालयन्ति। तस्या एव जलमानीय पिबन्ति, पाकादिकर्म च कुर्वन्ति। तत्रैव गोमेषच्छागादीनां स्नानमपि सम्पादयन्ति। पुष्करिणीं परितः नाना वृक्षाः सन्ति। केचन वृक्षाः तटसंलग्नाश्च वर्त्तन्ते। पुष्करिण्याः अपरभागे एकः आश्रमः अस्ति। तत्र एको मुनिः निवसति। सोऽपि तर्पणादिकं कर्म तत्र करोति। सः जनान् अनुनयति। वारं वारमपि उपदिशति। परं न कोऽपि तस्य वचनं शृणोति।

एकदा मुनिः चिन्तामग्नः- केन प्रकारेण इमे जनाः बोधयितव्याः? पुष्करिणीतः पङ्कोद्धारो न भवति। प्रतिदिनं च जलं प्रदूषितं भवति। तत् प्रदूषितं जलं पीत्वा जना अपि रुग्णा भवन्ति। कथं च इमे वारणीयाः...?

सहसा कोलाहलःश्रुतः। मुनिः बहिरागत्य अपश्यत्। केचन जना एकं बालकं ताडयन्ति। तं च भर्त्सयन्ति। बालकः भयेन कम्पते क्रन्दति च। मुनिः तत्र उपस्थितः। जनान् वारयित्वा अपृच्छत्। किम्

अभवत्? किमर्थं भवन्तः एनं ताडयन्ति? जनाः अवदन्। एष मिथ्यावादी। सदैव मिथ्याभाषणं करोति। वृथा सर्वान् प्रतारयति। सद्यः अस्मान् प्रतारितवान्।

मुनिः बालकम् अपृच्छत्।

अरे! सत्यं न वदसि?

बालकः कम्पितकण्ठेन अवदत्।

सत्यं किम्?

मुनिः तमाश्वासितवान्।

– न जानासि? तर्हि मया सह आगच्छतु।

एवम् उक्त्वा तस्य करं धृत्वा मुनिः आश्रमं प्रति बालकम् आनीतवान्।

मुनिः अचिन्तयत् – अयमेव समुचितः समयः। अस्मिन्नवसरे ग्राम्यजनाः अवश्यं शिक्षयितव्याः। ततः मुनिः बालकमपृच्छत्।

– किं तव नाम?

– नाम्नाऽहं कृष्णः।

– भवतु, केन प्रकारेण मिथ्या कथयसि?

– यथेच्छं वदामि।

– तर्हि इमां पुष्करिणीं दृष्ट्वा किमपि कथय।

बालकः कृष्णः प्रसन्नः सञ्जातः। सहर्षं च अवर्णयत्–

जलेऽस्मिन् एको महान् मत्स्यः अस्ति। भोः! जनाः

आगच्छत .... पश्यत ...., कीदृशं सः खेलति।

मुनिः अवदत् : साधु .... सम्यक् चिन्तितम्। तर्हि श्वः प्रभाते ग्राम्यजनान् साधु एतावद् वद।

कृष्णः किञ्चित् कुण्ठितोऽभवत्।

– नहि, ते मां ताडयिष्यन्ति।

– अरे, नहि ....। अनन्तरं मामेव साक्षीकरिष्यसि।

अपरप्रभाते कृष्णः ग्रामस्य प्रतिमार्गं जनान् अवदत्–पुष्करिण्याम् एको महान् मत्स्यो मया दृष्टः।

केचन अवदन्-

- अरे, त्वं मिथ्यावादी। तव वचने को विश्वासः?

तत् क्षणं कृष्णः उक्तवान्।

तदानीं मया सह मुनिः आसीत्। सोऽपि दृष्टवान्। आगच्छ ....तत्र पृच्छ ....।

मुनिं साक्षिरूपेण स्वीकृत्य ग्राम्यजनाः अपरदिने मत्स्यान्वेषणं कृतवन्तः। अन्ततः सर्वे मिलित्वा पुष्करिणीं प्रविष्टाः। मत्स्यान् च धृतवन्तः। किन्तु महामत्स्यस्य सन्धानं न प्राप्तम्। दिनपूर्णं ते अन्विष्टवन्तः। सायंकाले नितरां विरक्ताः अभवन्। मुनिमुपगम्य सरोषमवदन्-

- किं भवानपि अस्मान् प्रतारयति?

मुनिः धीरभावेन अवदत्।

- अरे! महामत्स्यः किं सरलतया धर्तुं शक्यते?! तदर्थं श्रमः आवश्यकः। श्वः प्रभाते बन्धच्छेदं कृत्वा जलं निष्कासयत।

तद्रात्रौ ग्राम्यजनानां नेत्रयोः निद्रा नास्ति। ते प्रातरागत्य प्रथमतः तटवर्तिवृक्षाणां छेदनं कृतवन्तः। बन्धच्छेदं कृत्वा जलं च बहिष्कृतवन्तः। एवं प्रकारेण कति दिनानि व्यतीतानि। ततः पङ्कोद्धारं कृत्वा पुष्करिणीं गभीरां कृतवन्तः। पङ्कं च आनीय शस्यक्षेत्रे प्रसारितवन्तः - इत्थं निदाघकालः उपगतः। सहसा वृष्टिरभवत्। पुष्करिणी च पूर्णा संजाता। निर्मलं जलं दृष्ट्वा सर्वे प्रसन्नाः अभवन्। तटानां परिष्करणेन सर्वत्र सौविध्यमनुभूतम्।

– इतः यदि कश्चित् जलं दूषयिष्यति सः दण्ड्यो भविष्यति।

एकदा मुनिः एकस्मिन् तटे कृष्णं दृष्ट्वा आकारितवान्। तम् आश्रम-मानीय अपृच्छत्।

– अरे, कृष्ण! सत्यं किं ज्ञातं न वा?

– न ज्ञातम्।

– अरे! सत्यकथनेन केवलं सत्यं न भवति। यत् कल्याणकरं वचनं तदपि सत्यम्।

– पितामही पुलोमजामबोधयत्। अत एव अस्माकं शास्त्रे वर्तते-

सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं भवेत्।

यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

ग्रामोपान्ते	–	ग्रामस्य उपान्ते, गाँव के पास।
पुष्करिणी	–	स्त्री० प्रथमा ए० व०, बावड़ी।
तस्या एव	–	तस्याः + एव, उससे ही।
तत्रैव	–	तत्र + एव, वहीं।
गोमेषच्छागादीनाम्	–	गोमेष + छाग + आदीनाम्, गाय, भेड़, बकरी आदि के।
तटसंलग्नाश्च	–	तटसंलग्नाः + च, किनारे के साथ लगे हुए।
सोऽपि	–	सः + अपि, वह भी।
चिन्तामग्नः	–	चिन्तायां मग्नः सप्तमी तत्पु० चिन्ता में डूबा हुआ।
बोधयितव्याः	–	बुध् + णिच् + तव्यत्। पुं. प्र. वि. बहु. व., समझाया जाये।
पङ्कोद्धारः	–	पङ्कस्य उद्धारः, षष्ठी तत्पु० कीचड़ को निकालना।
प्रदूषितम्	–	प्र + दूष् + णिच् + क्त, नपुं०, प्र० वि०, ए० व०, गन्दा किया हुआ।
प्रतिदिनम्	–	दिनं दिनं प्रति, अव्ययीभाव समास प्रतिदिन।
वारणीयाः	–	वृ + णिच् + अनीयर्, पु० प्र० वि० बहु० व०, रोका जाये।
बहिरागत्य	–	बहिः + आगत्य, बाहर आकर।

आगत्य	–	आ + गम् + क्त्वा >ल्यप्, आकर।
भर्त्सयन्ति	–	भर्त्स् – लट् ल०, प्र० पु० बहु० व०, डाँटते हैं।
उपस्थितः	–	उप + स्था + क्त, पुं० प्र० वि० ए० व०, आया है।
वारयित्वा	–	वृ + णिच् + क्त्वा >ल्यप् रोककर।
सदैव	–	सदा + एव, सदैव।
सद्यः	–	शीघ्र (अव्यय)।
प्रतारितवान्	–	प्र + तृ + णिच् + क्तवतु, ठगा।
कम्पितकण्ठेन	–	कम्पितः कण्ठः यस्य सः तेन, बहु० स०, डरे स्वर से।
आश्वासितवान्	–	आ + श्वस् + णिच् + क्तवतु पुं० प्र० वि० ए० व०, आश्वासन दिया।
अस्मिन्नवसरे	–	अस्मिन् + अवसरे, इस अवसर पर।
ग्राम्यजनाः	–	ग्राम्याः जनाः, कर्मधारय, गाँव के लोग।
शिक्षयितव्या	–	शिक्ष् + णिच् + तव्यत्। पुं० प्र० वि० बहु व०, शिक्षित किये जाने चाहिए।
नाम्नाऽहम्	–	नाम्ना + अहम्, नाम से मैं।
यथेच्छम्	–	इच्छाम् अनतिक्रम्य, अव्ययीभाव, इच्छा के अनुसार।
दृष्ट्वा	–	दृश् + क्त्वा, देखकर।
सञ्जातः	–	सम् + जन् + क्त० पुं० प्र० वि०, ए० व०, हो गया।
जलेऽस्मिन्	–	जले + अस्मिन् इस पानी में।
सहर्षम्	–	हर्षेण सह, अव्ययीभाव स० खुश होकर।
कुण्ठितोऽभवत्	–	कुण्ठितः + अभवत् दुःखी हुआ।
साक्षीकरिष्यसि	–	असाक्षिणं साक्षिणं करिष्यसि। साक्षिन् + च्वि + कृ + लृट् मध्यम पु० ए० व०, साक्षात् करोगे।
प्रतिमार्गम्	–	मार्गं मार्गं प्रति, अव्ययीभाव, प्रत्येक मार्ग में।

अभ्यासः

1. **अधोलिखितानां प्रश्नानामुत्तराणि संस्कृतभाषया देयानि**

   (क) अस्याः कथायाः लेखकः कः अस्ति?

   (ख) पुष्करिण्याः नाम किमासीत्?

(ग) मुनिः कैः कारणैः चिन्तितः आसीत्?

(घ) मुनिः जनान् किम् अपृच्छत्?

(ङ) बालकः कृष्णः पुष्करिण्याः विषये किम् अकथयत्?

(च) महामत्स्यस्य सन्धानम् कुत्र न प्राप्तम्?

(छ) वास्तविकम् सत्यम् किमस्ति?

2. मातृभाषया भावार्थं लिखत

(क) पुष्करिणीतः पङ्कोद्धारो न भवति।

(ख) ग्राम्यजनाः जलशोधनार्थम् अवश्यं शिक्षयितव्याः।

3. मातृभाषया आशयं स्पष्टीकुरुत

"सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं भवेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तमेतत् सत्यं मतं मम।।"

4. अधोलिखितानां शब्दानां पदपरिचयं लिखत

आनीय, असंतुष्टः, वारयित्वा, प्रतारिवतान्, सम्यक्, आसीत्, प्रसन्नाः, श्रेयः, परिष्करणम्, प्रथमतः।

5. रिक्तस्थानानि पूरयत

(क) पुष्करिणीम् .... नाना वृक्षाः सन्ति।

(ख) केन प्रकारेण .... बोधयितव्याः।

(ग) प्रदूषितं जलं .... जनाः अपि रुग्णाः भवन्ति।

(घ) जलेऽस्मिन् .... अस्ति।

(ङ) श्वः प्रभाते .... कृत्वा जलं निष्कासयत।

6. सन्धिच्छेदं कुरुत

तत्रैव, सोऽपि, पङ्कोद्धारः, अस्मिन्नवसरे, यथेच्छम्, तद्रात्रौ।

7. सविग्रहं समासनाम लिखत

तटसंलग्नाः, असंतुष्टः, मिथ्यावादी, कम्पितकण्ठेन, ग्राम्यजनान्, बन्धच्छेदम्, निर्मलम्।

योग्यताविस्तारः

समानान्तरसूक्तयः

(1) सत्यं नाम मनोवाक्कायकर्मभिः भूतहितार्थमभिभाषणम्।
(*शाण्डिल्योपनिषद्*)

(2) अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।। (*श्रीमद्भगवद्गीता 17/15*)

(3) सत्यं च किं भूतहितं सदैव। (*शङ्कराचार्यप्रश्नोत्तरी–22*)

(4) सत्यस्य वचनं श्रेयः सत्यादपि हितं वदेत्।
यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमिति कथ्यते।। (*व्याख्यानमाला 4/9*)

(5) नास्ति सत्यसमो धर्मो न सत्याद्विद्यते परम्।
न हि तीव्रतरं किञ्चिद् अनृतादिह विद्यते।। (*व्याख्यानमाला 4/2*)

एकादशः पाठः

स मे प्रियः

प्रस्तुत पद्य महर्षि व्यास विरचित श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के द्वादश अध्याय से संगृहीत है। इस अध्याय में भक्तियोग का वर्णन है। इसमें श्रीकृष्ण द्वारा साकार व निराकार–रूप से भगवत्प्राप्ति का सरलतम मार्ग वर्णित है। वस्तुतः प्रस्तुत पद्यों में वर्णित विचार वर्तमान समाज हेतु विशेषतः ज्ञानपिपासु छात्रवर्ग हेतु भी अत्यधिक प्रासङ्गिक व तर्कसंगत हैं। आज हम स्वयं को प्रत्येक कर्म का अधिष्ठाता मानकर अहंकार से ग्रस्त हैं तथा अभ्यास व संयम का त्यागकर शीघ्र ही सब कुछ पाने की लालसा से व्याकुल हैं। यथा पाठ के शीर्षक 'स मे प्रियः' से अवगत होता है कि ईश्वर को वे ही जन प्रिय हैं जो अपने स्वार्थ को त्यागकर परमार्थ हेतु व समाज के उत्थान हेतु अग्रसर हैं।

श्रीभगवानुवाच

क्लेशोऽधिकतरस्तेषामव्यक्तासक्तचेतसाम्।
अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्‌भिरवाप्यते॥

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते॥

मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।
निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशयः॥

संनियम्येन्द्रियग्रामं सर्वत्र समबुद्धयः।
ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः॥

अथ चित्तं समाधातुं न शक्नोषि मयि स्थिरम्।
अभ्यासयोगेन ततो मामिच्छाप्तुं धनंजय॥

श्रेयो हि ज्ञानमभ्यासाज्ज्ञानाद्ध्यानं विशिष्यते।
ध्यानात्कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्॥

अद्वेष्टा सर्वभूतानां मैत्रः करुण एव च।
निर्ममो निरहंकारः समदुःखसुखः क्षमी॥

अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि मत्कर्मपरमो भव।
मदर्थमपि कर्माणि कुर्वन्सिद्धिमवाप्स्यसि॥

समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानावमानयोः।
शीतोष्णसुखदुःखेषु समः सङ्गविवर्जितः॥
अथैतदप्यशक्तोऽसि कर्तुं मद्योगमाश्रितः।
सर्वकर्मफत्यागं ततः कुरु यतात्मवान्॥

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केन चित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान्मे प्रियो नरः॥

यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमानयः स मे प्रियः॥

अनपेक्षः शुचिर्दक्षः उदासीनो गतव्यथः।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

संतुष्टः सततं योगी यतात्मा दृढनिश्चयः।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो मद्भक्तः स मे प्रियः॥

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।

भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

संन्यस्य – (सम्+√न्यस्+ल्यप्) समर्पित करके।
ध्यायन्तः – (√ध्यै+शतृ) ध्यान करते हुए।
उपासते – (उप√आस्) समीप बैठते हैं, उपासना करते हैं।

आधत्स्व	–	(आ√दध् (आ.)) लोट् लकार, मध्यमः पुरुषः, एकवचनम्, (मन को) लगाओ, स्थिर करो।
अत ऊर्ध्वम्	–	(इस देह का) अन्त होने पर
संशयः	–	सन्देह, शङ्का
इन्द्रियग्रामम्	–	(इन्द्रियाणां ग्रामम् इति) इन्द्रियों का समूह
समबुद्धय	–	(समाना बुद्धिः येषां, ते) सब विज़यों (हर्ष–विषाद, राग–द्वेष आदि)
सर्वभूतहिते	–	(सर्वेषां भूतानां हिते) समस्त प्रणियों की भलाई में
समाधातुम्	–	(सम्+आ+√धा+तुमुन्)समाहित या स्थापित करने के लिए
आप्तुम्	–	(√आप्+तुमुन्) प्राप्त करने के लिए
धनञ्जय	–	अर्जुन (अर्जुन अपनी धनुर्विद्या के बल से राजाओं से धन व भीष्मादि से गोधन लाए थे अतएव उन्हें 'धनञ्जय' नाम से संबोधित किया गया है)
विशिष्यते	–	श्रेष्ठ है, श्रेयस्कर है।
अद्वेष्टा	–	द्वेष न करने वाला
सर्वभूतानाम्	–	समस्त प्राणियों का
निर्ममः	–	(निर्गतं ममत्वं यस्मात् सः) ममता (यह मेरा है का भाव) से रहित।
समदुःखसुखः	–	जिसके लिए दुःख व सुख समान हैं।
मत्कर्मपरमः	–	मेरी प्रसन्नता के कर्म अर्थात् श्रवण, कीर्तन।
सङ्गविवर्जितः	–	(सङ्गत् विवर्जितः इति) चेतन व अचेतन– सभी विषयों में आसक्ति का त्याग करने वाला, हर्ष एवं विषाद् से शून्य।
अशक्तः	–	(न शक्तः इति अशक्तः) असमर्थ।
यतात्मवान्	–	(यत+आत्मवान्)।
यत	–	इन्द्रियों को संयत करने वाला
आत्मवान	–	विवेक से युक्त।
अनिकेतः	–	(अविद्यमान निकेतं यस्य सः) निश्चित निवास स्थान से रहित।
हृष्यति	–	प्रसन्न होता है।
द्वेष्टि	–	द्वेष करता है।
उदासीनः	–	निष्पक्ष, तटस्थ रहने वाला।
गतव्यथः	–	(गताः (न उत्पन्नाः) व्यथाः यस्य सः) जिसे किसी भी स्थिति में पीड़ा नहीं होती।

सर्वारम्भपरित्यागी	–	लौकिक व अलौकिक फलवाले सभी कर्मों का त्याग करने वाला
सततम्	–	निरन्तर
यतात्मा	–	शरीर व इन्द्रिय आदि के समूह पर संयम करने वाला
मय्यर्पितमनोबुद्धिः	–	मुझमें अर्थात् शुद्ध ब्रह्म में अपने मन व बुद्धि को अर्पित करने वाला।
समुद्धर्ता	–	सम्यक् (पूरी तरह से) उद्धार करने वाला, शुद्ध ब्रह्म में धारणा कराने वाला।
मृत्युसंसारसागरात्	–	(मृत्युयुक्तः यः संसारः, सः एव सागरः इति) मृत्यु युक्त (मरणशील) संसार रूपी सागर से
नचिरात्	–	शीघ्र ही।
पार्थ	–	हे अर्जुन (सम्बोधन)।
मय्यावेशित	–	चेतसाम्, मुझमें अर्थात् ब्रह्म में प्रविष्ट (लीन) मन वालों का।

सन्धिविच्छेदः

अनन्येनैव	–	अनन्येन+एव
मय्येव	–	मयि+एव
संनियम्येन्द्रियग्रामम्	–	संनियम्य+इन्द्रियग्रामम्
मामिच्छाप्तुम्	–	माम्+इच्छ (संयोद्रः) इच्छ+आप्तुम्
ज्ञानमभ्यासाऽज्ञानाद्ध्यानम्	–	ज्ञानम्+अभ्यासात् (संयोग)+ज्ञानात्+ध्यानम्
कर्मफलत्यागस्त्यागाच्छान्तिरनन्तरम्	–	कर्मफलत्यागः+त्यागात्+शान्तिः+अनन्तरम्
अभ्यासेऽप्यसमर्थोऽसि	–	अभ्यासे+अपि+असमर्थः+असि
मदर्थम्	–	मत्+अर्थम्
मानावमानयोः	–	मान+अवमानयोः
शीतोष्ण	–	शीत+उष्ण
अथैतदप्यशक्तोऽसि	–	अथ+एतत्+अपि+अशक्तः+असि
मद्योगम्	–	मत्+योगम्
स मे	–	सः+मे
स्थिरमतिर्भक्तिमान्	–	स्थिरमतिः+भक्तिमान्
शुचिर्दक्षः	–	शुचिः+दक्षः
सर्वारम्भ	–	सर्व+आरम्भ
मद्भक्तः	–	मत्+भक्तः
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्यो	–	मयि+अर्पितमनः+बुद्धि+यः

अभ्यासः

1. **अधोलिखित- प्रश्नानाम् उत्तराणि संस्कृतभाषया देयानि-**

(क) एतानि पद्यानि कः कं प्रति कथयति?

(ख) वक्ता सर्वाणि कर्माणि कस्मिन् न्यसितुं कथयति?

(ग) ब्रह्मणि चित्तं स्थिरं कर्तुं किम् आवष्ठयकम्?

(घ) कस्मिन् रताः जनाः ब्रह्म प्राप्नुवन्ति?

(ङ) षाष्ठे पद्ये महर्षिणा के गुणाः वर्णिताः?

(च) अभ्यासे अपि असमर्थः जनः कथं सिद्धिमवाप्स्यति?

(छ) नवम-पद्यानुसारं 'मत्कर्मपरत्वे अशक्तः सति' किं कर्तव्यम्?

2. **ईश्वरस्य प्रियत्वं प्राप्तुम् के गुणाः आवश्यकाः सन्ति? विस्तरेण लिखत।**

3. **प्रदत्तानां पद्यांशानाम् भावार्थम् लिखत-**

(क) समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानावमानयोः।

(ख) मय्येव मन आधात्स्व मयि बुद्धिं निवेशय।

(ग) यो न दृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः।।

4. **पञ्चमं पद्यमाधृत्य लिखत- कस्मात् कः श्रेयः?**

यथा- अभ्यासात् ज्ञानम्- ....
....

5. **ईश्वरस्य स्वगुरुजनानां च प्रियः भवितुम् भवन्तः किं करिष्यन्ति?**

6. **रिक्तस्थानानि पूरयत-**

(क) संनियम्येन्द्रियग्रामं........................।

(ख) सन्तुष्टः........................योगी।

(ग) अनपेक्षः........................दक्षः।

(घ) तेषामहं........................मृत्युसंसारसागरात्।

(ङ) शुभाशुभपरित्यागी........................स मे प्रियः।

7. **निम्नपदेषु सन्धिच्छेदः विधेयः-**

अनन्येनैव, मय्येव, करुण एव, निरहङ्कारः, बुद्धिर्यः, मानावमानयोः, अभ्योऽप्यसमर्थः, मद्योगम्, अथैतत्, मदर्थम्

8. अधोलिखित-पदेषु विग्रहं कृत्वा समासनाम लिखत-

दृढनिश्चयः, अनिकेतः, स्थिरमतिः, अनपेक्षः, गतव्यथः, कर्मफलत्यागः, निरहङ्कारः, सर्वभूतहिते

9. प्रदत्त पदानां प्रकृति-प्रत्यय-परिचयः देयः-

संनियम्य, समाधातुम्, आप्तुम्, सन्तुष्टः, विवर्जितः, अशक्तः, कर्तुम्, आश्रितः

10. पाठात् विलोम-पदानि चित्वा लिखत-

निन्दा, शत्रुः, मानम्, समर्थः, शीतम्, व्यथितः, सीदति, शक्तः, चञ्चलम्, अपेक्षः

योग्यताविस्तारः

कतिपयाः अन्ये उपयोगिनः श्लोकाः अपि पठनीयाः-

श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन
दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन।
विभाति कायः करुणापराणां
परोपकारेण न तु चन्दनेन।।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

एके सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थान् परित्यज्य ये सामान्यस्तु परार्थमुद्यमभृताः स्वार्थाविरोधेन ये।
तेऽमी मानुषराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये
ये निघ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।।

घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारुगन्धम् छिन्नं छिन्नं पुनरपि पुनः स्वादु चैवक्षुदण्डम्।
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः काञ्चनं कान्तवर्णं न प्राणान्ते प्रकृतिविकृतिर्जायते चोत्तमानाम्।।

तमीश्वराणां परमं महश्वरम्
तं देवतानां परमं च दैवतम्।
पतिं पतीनां परमं परस्तात्
विदाम देवं भुवनेशमीड्यम्।।

द्वादशः पाठः

अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामि

वेदों का बोध, रक्षा एवं परम्परा को समृद्ध बनाए रखने के लिए वेदांगों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।

वेदाङ्ग छः हैं– शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष तथा इन सभी का ज्ञान वेदों के उत्तम बोध के लिए अत्यावश्यक है। इनमें से भी शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है–

'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य'। सामान्यतः 'शिक्षा' शब्द शिक्ष् धातु से निष्पन्न माना जाता है– 'शिक्ष्यतेऽनया सा शिक्षा'। परन्तु यहाँ शिक्षा शब्द शक् धातु के सन्नन्त रूप 'शक्तुम् इच्छा इति' निष्पन्न माना जाए अर्थात् सामर्थ्यप्राप्ति की इच्छा के अर्थ में और इस वेदाङ्ग में प्रधानतया वर्णोच्चारणादि का ज्ञान दिया गया है, जिनको जानने के बाद ही वेदमन्त्रों के उच्चारण तथा उनके अध्ययन की प्रवृत्ति सम्भव है। अतः पाणिनि के व्याकरणशास्त्र का पूरक शिक्षाग्रन्थ सम्भवतः पिङ्गलाचार्य द्वारा रचित 'पाणिनीय शिक्षा' ही सर्वप्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है जिसका अध्ययन वेद परम्परा को सुरक्षित रखने तथा आगे बढ़ाने के लिए समर्थ बनाता है।

त्रिषष्टिश्चतुःषष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा।।

स्वरा विंशतिरेकश्च स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ चत्वारश्च यमाः स्मृताः।।

अनुस्वारो विसर्गश्च ᳵ कᳵ पौ चापि पराश्रितौ।
दुःस्पृष्टो चापि विज्ञेयो ऌकारः प्लुत एव सः।।

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्मनो युङ्क्ते विवक्षया।
मनः कायाग्निमाहन्ति सः प्रेरयति मारुतम्॥

सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो वक्त्रमापाद्य मारुतः।
वर्णाञ्जनयते तेषां विभागः पञ्चधा स्मृतः॥

स्वरतः कालतः स्थानात्प्रयत्नानुप्रदानतः।
इति वर्णविदः प्राहुर्निपुणं तन्निबोधत॥

उदात्तानुदात्तश्च स्वरितश्च स्वरास्त्रयः।
ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति कालतो नियमा अचि॥

अष्टौ स्थानानि वर्णानामुरः कण्ठः शिरस्तथा।
जिह्वामूलं च दन्ताश्च नासिकोष्ठौ च तालु च॥

ओभावश्च विवृत्तिश्च शषसा रेफ एव च।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मणः॥

हकारं पञ्चमैर्युक्तमन्तःस्थाभिश्च संयुतम्।
उरस्यं तं विजानीयात्कण्ठ्यमाहुरसंयुतम्॥

कण्ठ्यावहाविचुयशास्तालव्या ओष्ठजावुपू।
स्युर्मूर्धन्या ऋटुरषा दन्त्या लृतुलसाः स्मृताः॥

जिह्वामूले तु कुः प्रोक्तो दन्त्योष्ठो वः स्मृतो बुधैः।
एऐ तु कण्ठतालव्या ओऔ तु कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ॥

अनुस्वारयमानां च नासिका स्थानमुच्यते।
अयोगवाहा विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः॥

व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रादंष्ट्राभ्यां न तु पीडयेत्।
भीता पतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान्प्रयोजयेत्॥

गीती शीघ्री शिरःकम्पी तथा लिखितपाठकः।
अनर्थज्ञोऽल्पकण्ठश्च षडेते पाठकाधमाः॥

माधुर्यमक्षरव्यक्तिः पदच्छेदस्तु सुस्वरः।
धैर्यं लयसमर्थं च षडेते पाठका गुणाः॥

छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥

शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्।
तस्मात्साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते॥

येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः॥

येन धौता गिरः पुंसां विमलैः शब्दवारिभिः।
तमश्चाज्ञानजं भिन्नं तस्मै पाणिनये नमः॥

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः॥

शब्दार्थाः टिप्पण्यश्च

स्वयंभुवा	–	ब्रह्मणा- स्वयंभू- ब्रह्मा के द्वारा
यादयश्च	–	य +आदयः+च (य्, र्, ल्, व्, श्,ष्, स्, ह् और य्)
यमाः	–	युग्म शब्द-यथा- अग्गिनः- वैदिक प्रयोग प्रायशः
पराश्रितौ	–	पर+आश्रितौ- अन्य पर आश्रित अर्थात् जिन वर्णों का स्वतंत्र प्रयोग असंभव हो।
विवक्षया	–	वक्तुम् इच्छा, तया (बोलने की इच्छा से)
जनयते	–	उत्पाद्यते- उत्पन्न करता है
वर्णविदः	–	वर्णवेत्तारः- वर्णों के ज्ञाता
अचि	–	स्वरेषु- अच् अर्थात् स्वरों में
ऊष्मणः	–	विसर्ग के/ऊष्मवर्ण के
विजानीयात्	–	ज्ञायेन्- जाने
बुधैः	–	विद्वद्भिः- विद्वानों के द्वारा
अनर्थज्ञः	–	यः अर्थं न जानाति- जिसे अर्थ का ज्ञान नहीं है

साङ्गम्	–	अङ्गैः सहितम्- सभी अङ्गों के साथ
अक्षरसमाम्नायम्	–	अक्षरों के संग्रह को
गिरः	–	वाणी–वचनानि- वचन
तमश्चाज्ञानजम्	–	तमः+च+अज्ञानजम्–अज्ञान से उत्पन्न अन्धकार
ज्ञानाञ्जनशलाकया	–	ज्ञानरुपिणा अञ्जनेन शलाकया च, ज्ञान रूपी सुरमे और सलाई से।

अभ्यासः

1. अधोलिखितप्रश्नानाम् उत्तराणि एकपदेन लिखत–

(क) नासिका अनुस्वारयमानां च किमुच्यते?
(ख) ऊष्मणः गतिः कतिविधा?
(ग) वेदस्य मुखं किं स्मृतम्?
(घ) अज्ञानान्धस्य लोकस्य चक्षुः पाणिनिना कया उन्मीलितम्?
(ङ) निरुक्तं वेदस्य किमुच्यते?
(च) पुत्रान् हरन्ती व्याघ्री तान् काभ्यां न पीडयेत्?

2. अधोलिखितप्रश्नानाम् उत्तराणि पूर्णवाक्येन लिखत–

(क) वर्णविदः किं प्राहुः?
(ख) कौ वर्णौ पराश्रितौ?
(ग) वर्णानाम् कति स्थानानि? तानि च कानि इत्यपि स्पष्टं लिखत।
(घ) कीदृशाः पाठकाः अधमाः मताः?
(ङ) पाठकानां गुणाः के मताः?
(च) किं प्रोक्तवते पाणिनये नमः?

3. अधोलिखितकथनेषु रेखांकितपदानि आधृत्य प्रश्ननिर्माणं कुरुत–

(क) चत्वरश्च यमाः स्मृताः।
(ख) मनः कार्याग्निमाहन्ति सः मारुतं प्रेरयति।
(ग) सोदीर्णो मूर्ध्न्यभिहतो मारुतः वक्त्रमापाद्य वर्णान् जनयते।
(घ) ओ औ तु कण्ठोष्ठजौ स्मृतौ।
(ङ) पाणिनिना अज्ञानजं तमः विमलैः शब्दवारिभिः भिन्नम्।
(च) साड्गं वेदमधीत्य ब्रह्मलोके महीयते।

4. श्लोकान्वयं समुचितपदैः पूरयत–

(क) त्रिषष्टिश्चतु:षष्टिर्वा वर्णाः शम्भुमते मताः।
प्राकृते संस्कृते चापि स्वयं प्रोक्ताः स्वयंभुवा।।

अन्वयः– शम्भुमते प्राकृते.......................चापि त्रिषष्टिः.......................वा वर्णाः स्वयंभुवा.......................प्रोक्ताः.......................(च)।

(ख) येनाक्षरसमाम्नायमधिगम्य महेश्वरात्।
कृत्स्नं व्याकरणं प्रोक्तं तस्मै पाणिनये नमः।।

अन्वयः– येन महेश्वरात् .... अधिगम्य कृत्स्नं ....प्रोक्तं ....पाणिनये.......................।

5. अधोलिखितश्लोकयोः भावं समुचितपदैः पूरयत–

कथितम्, अस्त्रस्वरूपाः, दन्दंष्ट्राभ्याम्, विचाराभिव्यक्तये अतिध्यानेन, परमावश्यकम्

(क) व्याघ्री यथा हरेत्पुत्रान्दन्ताभ्यां न तु पीडयेत्
भीतापतनभेदाभ्यां तद्वद्वर्णान् प्रयोजयेत्।।

भावः– कस्यापि भाषायाः यदि उच्चारणं लेखनं वा सम्यक् न क्रियते तदा श्रोता, पाठकः वा सम्यगर्थमवगन्तुं न पारयति।। अतः सम्यगुच्चारणं सम्यक् लेखनं च.......................इदं भावमेवाधिकृत्य पाणिनिशिक्षायाः अस्मिन् श्लोके.......................यत् यथा व्याघ्री पतनभेदाभ्यां भीता पुत्रान्.......................हरति परं एतावद्ध्यानेन येन शावकेषु दन्ताभ्याम् आक्रमणं तु सर्वथा न भवति यद्यपि व्याघ्रयाः दन्ताः एव तस्याः.......................। एवमेव वर्णानां प्रयोगकर्त्रा अपि वर्णप्रयोगः.......................एव कर्तव्यः।

नेत्रहीनस्य, वर्णोच्चाणम्, पाणिनये, ज्ञानरूपिणा, पाणिनीय-शिक्षा, सूत्ररचनाऽपि, उद्घाटितम्।

(ख) अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै पाणिनये नमः।।

भावः– प्राचीनकाले गुरुशिष्यपरम्परया एव सर्वं ज्ञानं प्रदीयते स्म शनैः शनैः पुस्तकानि स्वरूपं प्राप्नुवन्ति येन जनाः स्वाध्यायेन अपि ज्ञानं प्राप्तुं समर्थाः अभवन् पश्चात्.......................प्रारब्धा। वेदमन्त्राणम् उच्चारणेन सह एव.......................अपि शिक्षायाः रूपे प्रसिद्धमभवत् अस्मिन् प्रसङ्गे एव.......................अपि विशिष्टं स्थानम्। अतएव कविः अत्र कथयति यत् अज्ञानेन.......................लोकस्य पाणिनीयशिक्षायाः.......................अञ्जनेन शलाकया च नेत्रम् येन.......................तस्मै.......................वयं हृदा नमामः।

6. यथायोग्यं योजयत–

(क) स्वरा विंशतिरेकश्च	कालतो नियमा अचि।
(ख) आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान्	हस्तः कल्पोऽथ पठ्यते।
(ग) ह्रस्वो दीर्घः प्लुत इति	उरः कण्ठः शिरस्तथा।
(घ) छन्दः पादौ तु वेदस्य	मनो युङ्क्ते विवक्षया।
(ङ) यादयश्च स्मृता ह्यष्टौ	स्पर्शानां पञ्चविंशतिः।
(च) अष्टौ स्थानानि वर्णानाम्	चत्वारश्च यमाः स्मृताः।

7. समुचितमञ्जूषायां लिखत–

शिरःकम्पी, लयसमर्थम्, अल्पकण्ठः, गीती, माधुर्यम्, सुस्वरः, अनर्थज्ञः, पदच्छेदः

पाठकाधमाः	**पाठकगुणाः**
....	....
....	....
....	....
....	....

8. उदाहरणानुसारं प्रदत्तपदेभ्यः उपसर्गं चित्वा उपसर्गसहायतया नवीनपदं रचयत–

	उपसर्गः	**नवीनपदम्**
उदाहरणम्– प्रोक्ताः	प्र	प्रारम्भः
(क) अनुस्वारः	....	....
(ख) विसर्गः	....	....
(ग) दुःस्पृष्टः	....	....
(घ) संयुतम्	....	....
(ङ) सुस्वरः	....	....
(च) अधिगम्य	....	....

9. समुचितपदेन रिक्तस्थानानि पूरयत–

(क) लृकारः..........................एव सः। (अनुस्वारः/प्लुतः/विसर्गः)

(ख) वर्णानां विभागः.......................... स्मृतः। (शतधा/द्विधा/पञ्चधा)

(ग) दन्त्योष्ठो..........................स्मृतो बुधैः। (वः/कुः/तु)

(घ) ....विज्ञेया आश्रयस्थानभागिनः। (नासिक्याः/अयोगवाहाः/अनुस्वारयमाः)

(ङ) छन्दः........................तु वेदस्य। (पादौ/हस्तः/चक्षुः)

(च) शिक्षा........................तु वेदस्य। (मुखम्/श्रोत्रम्/घ्राणम्)

योग्यताविस्तारः

अस्मिन् पाठे अस्माभिः पाणिनीयशिक्षा इति ग्रन्थाधारितं किञ्चिद् ज्ञानं प्राप्तम्। अत्र पठितानां वर्णोच्चारणस्थानेत्यादीनां तुलना लघुसिद्धान्तकौमुद्यां प्रदत्तैः उच्चारणस्थानैः सह अपि कुरुत। तद्यथा–

अकुहविसर्जनीयानां कण्ठः।
इचुयशानां तालु।
ऋटुरषाणां मूर्धा।
लृतुलसानां दन्ताः।
उपूपध्मानीयानामोष्ठौ।
एदैतोः कण्ठतालु।
कण्ठोष्ठम्।
वकारस्य दन्तोष्ठम्।
जिह्वामूलीयस्य जिह्वामूलम्।
नासिकाऽनुस्वारस्य।

'शिक्षा' इति वेदाङ्गविषये तु भवद्भिः प्रायशः परिचयं प्राप्तम् अतः अन्याङ्गानामपि विषये भवतः जिज्ञासा तु स्यादेव। अत्र जानीमः अधुना संक्षिप्त परिचयः अन्येषां पञ्चाङ्गानाम्।

कल्प– वेदानां कस्य मन्त्रस्य प्रयोगः कस्मिन् कर्मणि कर्तव्यम् इत्यस्य वर्णनं कृतम्। अस्य तिस्रः शाखाः सन्ति– श्रौतसूत्रम्, गृह्यसूत्रम्, धर्मसूत्रं च।

व्याकरणम्– व्याकरणे प्रकृतिप्रत्ययादियोगेन शब्दसिद्धिः उदात्तानुदात्तस्वरितस्वराणां स्थितेः बोधः भवति।

निरुक्तम्– वेदेषु प्रयुक्तशब्दानां निर्वचनमाध्यमेन स्पष्टीकरणम् कृतं यस्य माध्यमेन शब्दार्थानामवबोधाः निश्चयात्मकरूपेण भवति यथा गच्छतीति जगत्, संसरति इति संसारः इत्यादिप्रकारेण।

ज्योतिष– अनेन वैदिकयज्ञानाम् अनुष्ठानेत्यादीनाञ्च मुहूर्तसमयेत्यादीनां ज्ञानं भवति।

छन्दः– वेदेषु प्रयुक्तानां गायत्री, उष्णिकादि–छन्दसां रचनाज्ञानं छन्देःशास्त्रेण भवति।

मङ्गलम्

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्यस्विद्धनम्॥1॥

(*यजुर्वेदः – 40/1*) *ईशोपनिषद्*

भावार्थः सृष्टि में ये सब जो कुछ भी जड़–चेतन पदार्थ हैं वे ईश्वर से आवासित या आच्छादित हैं अर्थात् सभी में ईश्वर का निवास है। अतः सभी लोग उस परमेश्वर के द्वारा दिए गए पदार्थों का ही परस्पर त्याग की भावना से भोग करें। किसी अन्य व्यक्ति के धन का लोभ न करें॥1॥

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि॥2॥

(*ऋग्वेदः – 10/192/3*)

भावार्थः इस मंत्र में मानवमात्र के लिए प्रेरणा दी गयी है कि सभी के विचार समान हों। समिति अर्थात् सभाएँ और उनमें बैठकर लिए गए निर्णय समान हों। सभी के मन अर्थात् संकल्प तथा चित्त अर्थात् चिंतन एक जैसे हों। मैं तुम सब को एक ही विचार से युक्त करता हूँ तथा सभी के लिए एक ही जैसे (समान भाव से) हवि अर्थात् अन्न आदि भोग्य पदार्थ प्रदान करता हूँ।

अभिप्राय यह है कि परमात्मा एवं प्रकृति की ओर से सभी को उपभोग के साधन समान भाव से दिए गए हैं। अतः विचारों की एकता, भोगों की समानता तथा समरसता में ही सुख है॥2॥

द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ँ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिर्वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म
शान्तिः सर्व ँ शान्तिःशान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि॥3॥

(*यजुर्वेदः 36/17*)

भावार्थ : द्युलोक शांतिदायक हो, अन्तरिक्षलोक तथा पृथ्वीलोक शांतिदायक हों, जल एवं ओषधियाँ तथा वनस्पतियाँ शांति देने वाली हों, सभी देवता अथवा सृष्टि की दिव्य शक्तियाँ शांति देने वाली हों, ब्रह्म अर्थात् महान् परमेश्वर या उसका दिया हुआ ज्ञान वेद, शांतिदायक हो, सम्पूर्ण चराचर जगत् शांतिप्रद हों, सब जगह शांति ही शांति हो, ऐसी शांति मुझे प्राप्त हो और वह सदा बढ़ती ही रहे।

अभिप्राय यह है कि सृष्टि के कण-कण में शांति हो। सभी पदार्थ सभी के लिए सुख-शांतिदायक हों। समस्त पर्यावरण ही हमारे लिए सुखद एवं शांतिप्रद हो। सुख-शांति की यह धारा कभी कम न हो, सदा बढ़ती ही रहे।।3।।

परिशिष्ट

अनुशंसित ग्रन्थ

क्र.सं.	ग्रन्थनाम	लेखक	संपादक/प्रकाशक
1.	**ऋग्वेद**	....	सं. प्र. एन. एस. सोनटक्के, वैदिक संशोधन मण्डल, पूना – 2
2.	**यजुर्वेद**	उव्वटमहीधरभाष्य	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, 1912
3.	**अथर्ववेद**	....	सातवलेकर पारडी, 1957
4.	**रामायण**	वाल्मीकि	नाग पब्लिशर्स दिल्ली, 1990, पुनर्मुद्रित संस्करण
5.	**पञ्चरात्र**	भास	भासनाटकचक्रम्, सं. सी. आर. देवधर, ओरिएण्टल बुक एजेन्सी, पूना – 1954
6.	**महाभाष्य**	पतंजलि	चारुदेव शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, बंगलोरोड, दिल्ली – 7
7.	**जातकमाला**	आर्यशूर	सूर्यनारायण चौधरी, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – 1971
8.	**मृच्छकटिक**	शूद्रक	निर्णयसागर प्रेस, मुम्बई।
9.	**हितोपदेश**	नारायणशर्मा	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – 7
10.	**चरक संहिता**	चरक	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
11.	**दशकुमारचरित**	दण्डी	श्रीविश्वनाथ झा, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – 7
12.	**कथासरित्सागर**	सोमदेव	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – 7
13.	**संस्कृत नाटक**	ए. बी. कीथ	उदयभानु सिंह, (हिन्दी अनुवाद) मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली – 7
14.	**संस्कृत साहित्य का इतिहास**	बलदेव उपाध्याय	शारदा मंदिर, वाराणसी।

15.	**वैदिक साहित्य और संस्कृति**	बलदेव उपाध्याय	शारदा मंदिर, वाराणसी।
16.	**महाभारत**	व्यास	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
17.	**अभिज्ञान-शाकुन्तलम्**	कालिदास	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली।
18.	**कादम्बरी**	बाणभट्ट	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 7
19.	**सत्याग्रहगीता**	क्षमाराव पण्डिता	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी।
20.	**भारतविजय नाटकम्**	मथुराप्रसाद दीक्षित	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली - 7
21.	**मृच्छकटिक**	शूद्रक	हिन्दी अनुवाद मोहनराकेश, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1962
22.	**कथासरित्सागर**	शूद्रक	हिन्दी रूपान्तर प्रो. राधा वल्लभ त्रिपाठी, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली, 2005
23.	**सुब्बण्णः**	मास्ति वेङ्कटेश आय्यंगार	संस्कृत अनुवादक हो. ना. वेङ्कटेश शर्मा शास्त्री, अखिल कर्नाटक संस्कृत परिषद् बैंगलूर, 1993